दृष्टि The Vision

MPPSC Series Book-1

मध्य प्रदेश, भारत का इतिहास एवं कला-संस्कृति

MPPSC सहित अधीनस्थ सेवाओं एवं
पीईबी, पीआरटी, कांस्टेबल सहित अन्य
एकदिवसीय परीक्षाओं के लिये संपूर्ण पुस्तक

बिहार PCS

प्रिलिम्स कोर्स

मोड : ऑनलाइन/पेन ड्राइव

कोर्स की विशेषताएँ

- देश के सर्वश्रेष्ठ शिक्षकों की टीम द्वारा अध्यापन।
- कोर्स की वैधता 2 वर्षों तक तथा प्रत्येक वीडियो को 3 बार तक देखने की सुविधा।
- हर कक्षा के अंत में उस टॉपिक से संबंधित पूछे गए और पूछे जा सकने वाले प्रश्नों पर चर्चा।
- वीडियो क्लिप्स और विज़ुअल्स की मदद से जटिल विषयों की रुचिकर प्रस्तुति।
- कोर्स के अनुसार तैयार की हुई पाठ्यसामग्री।

अधिक जानकारी के लिये 9311406440 नंबर पर कॉल या वाट्सएप करें

ऑनलाइन क्लास के लिये इंस्टॉल करें **Drishti Learning App**

IAS Foundation Course

सामान्य अध्ययन

(प्रिलिम्स + मेन्स)

मोड : ऑनलाइन/पेन ड्राइव

डॉ. विकास दिव्यकीर्ति के निर्देशन में

कोर्स की विशेषताएँ

- डॉ. विकास दिव्यकीर्ति तथा देश के सर्वश्रेष्ठ शिक्षकों की टीम द्वारा अध्यापन।
- डॉ. विकास दिव्यकीर्ति द्वारा एथिक्स (संपूर्ण), राजव्यवस्था (व्यापक अंश) और समाज (सैद्धांतिक पक्ष) का अध्यापन।
- कुल 1200+ घंटों की 500+ कक्षाएँ।
- प्रत्येक कक्षा को 3 बार तक देखने की सुविधा। कोर्स की वैधता बैच शुरू होने से 3 वर्षों तक।
- संशय निवारण के लिये एकेडमिक सपोर्ट टीम की सुविधा उपलब्ध। नियमित रूप से डाउट क्लासेज़ तथा ऑनलाइन मीटिंग्स की भी व्यवस्था।

एडमिशन प्रारंभ | पहले 500 विद्यार्थियों के लिये 25% की छूट

अतिरिक्त जानकारी के लिये 9311406442 नंबर पर कॉल करें या वाट्सएप करें

इंस्टॉलमेंट्स पर भी उपलब्ध ! लॉग-इन कीजिये : www.drishtiIAS.com

ऑनलाइन क्लास के लिये अपने एंड्रॉयड फोन पर इंस्टॉल करें **Drishti Learning App**

दृष्टि The Vision

MPPSC Series : Book-1

मध्य प्रदेश, भारत का इतिहास एवं कला-संस्कृति

(मध्य प्रदेश PCS के विशेष संदर्भ सहित)

Drishti Publications dp

दृष्टि पब्लिकेशन्स

641, प्रथम तल, डॉ. मुखर्जी नगर, दिल्ली-110009
दूरभाष: 011-47532596, 87501 87501

Website: www.drishtiias.com
E-mail : booksteam@groupdrishti.com

शीर्षक : मध्य प्रदेश, भारत का इतिहास एवं कला-संस्कृति

लेखक : टीम दृष्टि

संस्करण- मार्च 2021

मूल्य : ₹ 490

ISBN : 978-93-90955-00-8

प्रकाशक

VDK Publications Pvt. Ltd.
(दृष्टि पब्लिकेशन्स)
641, प्रथम तल,
डॉ. मुखर्जी नगर,
दिल्ली-110009

विधिक घोषणाएँ

- इस पुस्तक में प्रकाशित सूचनाएँ, समाचार, ज्ञान एवं तथ्य पूरी तरह से सत्यापित किये गए हैं। फिर भी, यदि कोई जानकारी या तथ्य गलत प्रकाशित हो गया हो तो प्रकाशक, संपादक या मुद्रक उससे किसी व्यक्ति-विशेष या संस्था को पहुँची क्षति के लिये ज़िम्मेदार नहीं है।
- हम विश्वास करते हैं कि इस पुस्तक में छपी सामग्री लेखकों द्वारा मौलिक रूप से लिखी गई है। अगर कॉपीराइट उल्लंघन का कोई मामला सामने आता है तो प्रकाशक को ज़िम्मेदार नहीं ठहराया जाएगा।
- सभी विवादों का निपटारा दिल्ली न्यायिक क्षेत्र में होगा।
- © **कॉपीराइट :** VDK Publications Pvt. Ltd. (दृष्टि पब्लिकेशन्स), सर्वाधिकार सुरक्षित। इस प्रकाशन के किसी भी अंश का प्रकाशन अथवा उपयोग, प्रतिलिपीकरण, ऐसे यंत्र में भंडारण जिससे इसे पुनः प्राप्त किया जा सकता हो या स्थानांतरण, किसी भी रूप में या किसी भी विधि से (इलेक्ट्रॉनिक, यांत्रिक, फोटो-प्रतिलिपि, रिकॉर्डिंग या किसी अन्य प्रकार से) प्रकाशक की पूर्वानुमति के बिना नहीं किया जा सकता।
- एम.पी. प्रिंटर्स, बी-220, फेज़-2, नोएडा (उत्तर प्रदेश) से मुद्रित।

दो शब्द

प्रिय पाठको,

अपनी स्थापना के समय से ही हमारा उद्देश्य यही रहा है कि हम आप पाठकों को श्रेष्ठ गुणवत्ता की पाठ्य-सामग्री उपलब्ध करा सकें। इसी संकल्प के साथ हम अपनी यात्रा में बढ़ते गए। हमें इस बात की खुशी है कि इस यात्रा में आप पाठकों का अपार स्नेह प्राप्त हुआ, जिससे हमें और आगे बढ़ने तथा नए प्रयोगों को आज़माने का हौसला मिला। हमारे विभिन्न प्लेटफॉर्म्स पर विद्यार्थी हमसे संवाद करते हैं और अपनी बात हम तक पहुँचाते हैं। हम इन संवाद पर गंभीरता से विचार करते हैं तथा हमारी कोशिश रहती है कि आपके अधिक से अधिक जायज़ सुझावों को मूर्त रूप प्रदान कर दिया जाए। इसी सिलसिले में लंबे समय से यह मांग हमारे पास आ रही थी कि हम 'मध्य प्रदेश राज्य सेवा (प्रारंभिक एवं मुख्य) परीक्षा' (MPPSC) के लिये भी पुस्तकों का प्रकाशन करें। हमारी भी इस बात को लेकर सहमति थी कि विद्यार्थियों के बीच श्रेष्ठ कंटेंट उपलब्ध होना ही चाहिये। हम जब भी कोई नई शुरुआत करते हैं तो हमारी कोशिश यही रहती है कि हम श्रेष्ठ गुणवत्ता की पाठ्य-सामग्री के अपने संकल्प से किसी भी कीमत पर समझौता न करें, इसलिये इस प्रस्ताव पर हम लंबे समय से काम कर रहे थे, लेकिन अनेक चरणों से गुज़रने के बाद जब हम इस बात को लेकर आश्वस्त हो गए कि ये पुस्तकें आपके संघर्ष को आसान करने में सक्षम हैं, तब हमने इनके प्रकाशन का निर्णय लिया।

अब, हम आपके समक्ष एक नई पुस्तक सीरीज़ के साथ उपस्थित हैं, जो न केवल 'मध्य प्रदेश राज्य सेवा (प्रारंभिक एवं मुख्य) परीक्षा' को संपूर्णता से कवर करती है बल्कि यहाँ की अधीनस्थ/एकदिवसीय परीक्षाओं के लिये भी समान रूप से उपयोगी है। यह कुल **आठ पुस्तकों** की एक सीरीज़ है, जिसकी पहली कड़ी के रूप में **'मध्य प्रदेश, भारत का इतिहास एवं कला-संस्कृति** की पुस्तक अब आपके हाथों में है। विशिष्ट रूप से इस पुस्तक की चर्चा के पूर्व हम आपको संक्षेप में इस सीरीज़ की कुछ विशेषताओं से अवगत कराना चाहेंगे, ताकि आप इसकी उपयोगिता और अपनी तैयारी में इसके महत्त्व का ठीक-ठीक अनुमान कर सकें।

यह सीरीज़ मध्य प्रदेश राज्य सेवा परीक्षा के संपूर्ण पाठ्यक्रम (प्रारंभिक एवं मुख्य परीक्षा) को तो कवर करती ही है, साथ ही हमने इसमें उन अतिरिक्त तथ्यों एवं विषय-वस्तुओं को भी शामिल कर दिया है जो मध्य प्रदेश की प्रमुख अधीनस्थ/एकदिवसीय परीक्षाओं के लिये काफी महत्त्वपूर्ण हैं। इससे आपकी बिना अतिरिक्त मेहनत के अन्य परीक्षाओं की भी तैयारी हो जाएगी और MPPSC पर मुख्य फोकस भी बना रहेगा। इस सीरीज़ की प्रत्येक पुस्तक लगभग 400-600 पृष्ठों की है। प्रथमद्रष्टया आपको यह आकार बड़ा लग सकता है लेकिन ऐसा इसलिये है ताकि एक ही स्रोत से आपकी पूरी तैयारी हो सके। जब आप इसे पढ़ेंगे तो इस बात को महसूस कर पाएंगे।

अब, प्रस्तुत पुस्तक की बात करें तो यह इतिहास एवं कला-संस्कृति के संपूर्ण पाठ्यक्रम को कवर करती है। विशेषज्ञों की हमारी टीम ने इस विषय से संबंधित सभी महत्त्वपूर्ण मानक पुस्तकों का अध्ययन कर आयोग की मांग के अनुरूप उसके सार को मध्य प्रदेश के विशेष संदर्भ में प्रस्तुत किया है। हमारी टीम ने अब तक पूछे गए प्रश्नों का भी गंभीरता से अवलोकन किया है तथा पाठ्य-सामग्री को इसी अनुरूप ढाला है। इस पुस्तक के प्रत्येक अध्याय के अंत में विगत वर्षों में पूछे गए प्रश्नों के साथ-साथ भविष्य के लिये संभावित प्रश्नों का भी संकलन किया गया है। इससे आपको न केवल परीक्षा की प्रकृति का अनुमान हो सकेगा बल्कि आप पढ़े हुए पाठ को कम समय में रिवाइज़ भी कर सकते हैं। तथ्यों की सटीकता के लिये हमारी टीम ने कई चरणों में इसे जाँचा है तथा इस बात को सुनिश्चित किया है कि पुस्तक तथ्यात्मक त्रुटियों से मुक्त हो। भाषा और प्रस्तुतीकरण के स्तर पर भी हमारी कोशिश यही रही है कि संप्रेषण सहज और बोधगम्य हो।

अंत में यह कि अब यह पुस्तक आपके हाथों में है। इसके अंतिम निर्णयकर्त्ता भी आप ही हैं। आप इसे पढ़ें और अपनी राय हमें बताएँ। इससे हमें और बेहतर करने की प्रेरणा मिलती है। **आप अपनी राय हमें 8130392355 नंबर पर वाट्सएप मैसेज के माध्यम से भेज सकते हैं।**

साभार,

प्रधान संपादक

दृष्टि पब्लिकेशन्स

अनुक्रम

खंड-A: प्राचीन भारत

1. प्राचीन भारतीय इतिहास के स्रोत.....3 – 10
2. प्रागैतिहासिक काल.....11 – 17
3. हड़प्पा सभ्यता.....18 – 26
4. वैदिक काल.....27 – 38
5. छठी शताब्दी ईसा पूर्व का काल (महाजनपद काल)..39 – 54
6. मौर्य साम्राज्य.....55 – 67
7. मौर्योत्तर काल.....68 – 76
8. संगम काल.....77 – 80
9. गुप्त साम्राज्य.....81 – 90
10. गुप्तोत्तर काल.....91 – 97
11. दक्षिण भारत.....98 – 102
12. पूर्व-मध्यकालीन भारत.....103 – 114

खंड-B: मध्यकालीन भारत

13. मध्यकालीन भारतीय इतिहास के स्रोत.....3 – 6
14. भारत में तुर्कों का आगमन.....7 – 9
15. दिल्ली सल्तनत.....10 – 30
16. क्षेत्रीय शक्तियाँ: 13वीं-15वीं सदी.....31 – 35
17. विजयनगर एवं बहमनी साम्राज्य.....36 – 44
18. भक्ति एवं सूफी आंदोलन.....45 – 50
19. मुगल साम्राज्य.....51 – 68
20. मराठा साम्राज्य.....69 – 74

खंड-C: आधुनिक भारत

21. यूरोपीय कंपनियों का भारत आगमन.....3 – 6
22. ब्रिटिश कंपनी द्वारा भारत विजय.....7 – 19
23. ब्रिटिश साम्राज्यवादी नीति.....20 – 23
24. ब्रिटिश शासन का भारतीय अर्थव्यवस्था पर प्रभाव.....24 – 39
25. ब्रिटिश शासन का भारतीय समाज पर प्रभाव.....40 – 58
26. ब्रिटिश शासन के प्रति भारतीयों की प्रतिक्रिया.....59 – 80
27. आधुनिक भारत में सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलन.....81 – 93
28. राष्ट्रवाद का उदय.....94 – 101
29. राष्ट्रीय आंदोलन.....102 – 135
30. राष्ट्रीय आंदोलन में मज़दूरों एवं महिलाओं की सहभागिता.....136 – 139
31. ब्रिटिशकालीन महत्त्वपूर्ण अधिनियम.....140 – 149
32. ब्रिटिश गवर्नर, गवर्नर जनरल, वायसरॉय.....150 – 155
33. गणतंत्र के रूप में भारत का उदय.....156 – 160
34. स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् प्रमुख घटनाक्रम.....161 – 170
35. मध्य प्रदेश की प्रमुख रियासतें.....171 – 178

खंड-D: कला एवं संस्कृति

36. भारत एवं मध्य प्रदेश की सांस्कृतिक विरासत.....3 – 31
37. भारत का एशियाई देशों से सांस्कृतिक संबंध.....32 – 36
38. भारतीय कला प्रारूप.....37 – 133
39. मध्य प्रदेश : जनजातियाँ एवं उनकी संस्कृति.....134 – 142
40. भारत एवं मध्य प्रदेश का साहित्य एवं साहित्यकार.....143 – 160
41. मध्य प्रदेश : प्रसिद्ध व्यक्तित्व.....161 – 170
42. विविध.....171 – 189

खंड

A

प्राचीन भारत

(मध्य प्रदेश के विशेष संदर्भ सहित)

1 प्राचीन भारतीय इतिहास के स्रोत
(Sources of Ancient Indian History)

इतिहासकार एक वैज्ञानिक की भाँति उपलब्ध सामग्री की समीक्षा करके अतीत का सही चित्रण करने का प्रयास करता है। उसके लिये साहित्यिक सामग्री, पुरातात्त्विक साक्ष्य और विदेशी यात्रियों के यात्रा-वृत्तांत सभी का महत्त्व है। प्राचीन भारतीय इतिहास के अध्ययन के लिये पूर्णत: शुद्ध ऐतिहासिक सामग्री विदेशों की अपेक्षा अल्प मात्रा में उपलब्ध है। यद्यपि भारत में यूनान के हेरोडोटस या रोम के लिवी जैसे इतिहासकार नहीं हुए, अत: कुछ पाश्चात्य विद्वानों की यह मानसिक धारणा बन गई थी कि भारतीयों को इतिहास की समझ ही नहीं थी। लेकिन, ऐसी धारणा बनाना भारी भूल होगी। वस्तुत: प्राचीन भारतीय इतिहास की संकल्पना आधुनिक इतिहासकारों की संकल्पना से पूर्णत: अलग थी। वर्तमान इतिहासकार ऐतिहासिक घटनाओं में कारण-कार्य संबंध स्थापित करने का प्रयास करते हैं। उनके वर्णन में आम जनमानस भी उतना ही महत्त्व रखते थे जितना सम्राटों अथवा साम्राज्यों के उत्थान और पतन, लेकिन प्राचीन इतिहासकार केवल उन घटनाओं या तथ्यों का वर्णन करता था जिनमें आम जनमानस को कुछ सीखने को मिल सके। प्राचीन युग में भारतीय धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों को जीवन के लक्ष्य की प्राप्ति में सहायक समझते थे। इसीलिये प्राचीन भारत का इतिहास राजनीतिक कम और सांस्कृतिक अधिक है। भारतीय इतिहासकारों का दृष्टिकोण पूर्णतया धर्मपरक था, किंतु धर्म के अतिरिक्त अनेक सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक कारण थे जिन्होंने भारत में अनेक आंदोलनों, संस्थाओं और विचारधाराओं को जन्म दिया। अत: भारतीय इतिहास का सार्वभौमिक स्वरूप जानने के लिये इन तथ्यों का अध्ययन करना आवश्यक है।

भारतीय इतिहास के काल को तीन भागों में बाँटकर देखा जा सकता है– वह काल जिसके लिये कोई लिखित साधन उपलब्ध नहीं है और जिसमें मनुष्य का जीवन अपेक्षाकृत पूर्णत: सभ्य नहीं था, 'प्रागैतिहासिक काल' कहलाता है। इतिहासकार उस काल को 'ऐतिहासिक काल' का नाम देते हैं जिसके लिये लिखित साक्ष्य उपलब्ध हैं और जिसमें मनुष्य सभ्य बन गया था। प्राचीन भारतीय इतिहास में लिखित साधन उपलब्ध तो हैं लेकिन वे अस्पष्ट और गूढ़ लिपि में हैं जिनका अर्थ निकालना कठिन है। इस काल को भारतीय इतिहासकार आद्य ऐतिहासिक काल का इतिहास कहते हैं। सैंधव संस्कृति और वैदिककालीन संस्कृति की गणना 'आद्य ऐतिहासिक काल' के अंतर्गत की जाती है। इसी आधार पर हड़प्पा संस्कृति से पूर्व का भारतीय इतिहास 'प्रागैतिहासिक' और लगभग ईसा पूर्व 600 के बाद का इतिहास 'ऐतिहासिक काल' कहलाता है।

प्रागैतिहासिक काल का इतिहास लिखते समय इतिहासकार को पूर्णतया पुरातात्त्विक साक्ष्यों पर निर्भर रहना पड़ता है। आद्य इतिहास लिखते समय वह पुरातात्त्विक एवं साहित्यिक दोनों प्रकार के साधनों का उपयोग करता है तथा इतिहास लिखते समय वह इन दोनों साधनों के अतिरिक्त विदेशी लेखकों के वर्णनों का प्रयोग करता है। विदेशी यात्रियों के वर्णन भी साहित्यिक साधन हैं लेकिन उनकी उपयोगिता के विस्तृत वर्णन की आवश्यकता के कारण उनका वर्णन अलग शीर्षक के अंतर्गत किया गया है। इन सभी ऐतिहासिक साक्ष्यों का उपयोग करके इतिहासकार काल विशेष का ठीक-ठीक चित्र प्रस्तुत करने का प्रयास करता है।

अत: हम सुविधा के लिये भारतीय इतिहास को जानने के साधनों को दो शीर्षकों में रख सकते हैं– 1. पुरातात्त्विक स्रोत, 2. साहित्यिक स्रोत।

ऐतिहासिक स्रोतों का वर्गीकरण (Classification of Historical Sources)

पुरातात्त्विक स्रोत *(Archaeological Sources)*

पुरातात्त्विक स्रोतों में निम्नांकित शामिल हैं-

अभिलेख (Inscription)

पुरातात्त्विक साक्ष्यों के अंतर्गत सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण साक्ष्य अभिलेख हैं। इनके अध्ययन को पुरा लेखशास्त्र (एपिग्राफी) कहते हैं। संपूर्ण देश में आरंभिक अभिलेख पत्थरों पर खुदे मिलते हैं किंतु ईसा के आरंभिक काल में इस काम में ताम्रपत्रों का प्रयोग आरंभ हुआ। प्राचीन भारत के अधिकतर अभिलेख पत्थरों या धातु की पट्टिकाओं पर खुदे मिले हैं, अत: उनमें साहित्यिक साक्ष्य की भाँति परिवर्तन करना असंभव था। सबसे प्राचीन अभिलेखों में मध्य एशिया के बोगज़कोई से प्राप्त अभिलेख हैं जिन पर वैदिक देवता मित्र, वरुण, इंद्र और नासत्य के नाम मिलते हैं। भारत में सबसे प्राचीन अभिलेख अशोक के हैं। केवल मास्की तथा गुर्जरा (मध्य प्रदेश) से प्राप्त अभिलेखों में अशोक के नाम का स्पष्ट उल्लेख है तथा अशोक के अन्य अभिलेखों में उसे देवताओं का प्रिय, 'प्रियदर्शी राजा' कहा गया है। अशोक के अभिलेख ब्राह्मी, खरोष्ठी, ग्रीक तथा अरामाइक (एरामाइक) लिपि में उत्कीर्ण हैं। ब्राह्मी लिपि को सबसे पहले 1837 ई. में जेम्स प्रिंसेप नामक विद्वान ने पढ़ा था।

अशोक के अभिलेख शासकीय एवं व्यक्तिगत दोनों तरह के हैं। शासकीय अभिलेख या तो राजकवियों ने लिखे जो प्रशस्तियाँ हैं या भूमि-अनुदान पत्र। प्रशस्तियों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अभिलेख समुद्रगुप्त का प्रयाग प्रशस्ति अभिलेख है जिसमें समुद्रगुप्त की विजयों और नीतियों का पूर्ण विवेचन मिलता है। इसी तरह प्रतिहार शासक राजा मिहिरभोज की ग्वालियर प्रशस्ति में इस शासक की उपलब्धियों का वर्णन है। इसी तरह के अभिलेखों के अन्य उदाहरण भी हैं। कुछ अभिलेख पाषाण या स्तंभों पर खुदे हैं तथा उनके प्राप्ति स्थलों में उस शासक के राज्य की सीमाओं का भी अनुमान लगाया जा सकता है। भूमि अनुदान पत्र ज़्यादातर विश्वसनीय नहीं हैं, क्योंकि राजकवियों ने इन प्रशस्तियों और अनुदान-पत्रों पर अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन किया है जो संभव नहीं है। ये अनुदान-पत्र मुख्यत: तांबे की चादरों पर उत्कीर्ण हैं। इन अनुदान-पत्रों में भूमिखंडों की सीमाओं के साथ उस समय का वर्णन मिलता है, जब वे भूमिखंड दान में दिये गए।

- सर्वप्रथम सिक्कों पर लेख लिखने का कार्य यवन शासकों ने किया।
- सर्वप्राचीन भारतीय धर्मग्रंथ **वेद** हैं। वेद चार हैं- ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद।
- सबसे प्राचीन वेद **ऋग्वेद** एवं सबसे बाद का वेद **अथर्ववेद** है।
- ऋग्वेद के ब्राह्मण ग्रंथ ऐतरेय और कौषीतकी हैं।
- भारतीय ऐतिहासिक कथाओं का सबसे अच्छा क्रमबद्ध विवरण **पुराणों में** मिलता है। इनकी संख्या **18** है। पुराणों में **मत्स्यपुराण सबसे प्राचीन** एवं **प्रामाणिक** है। कालिका पुराण का संबंध शाक्त धर्म से है। कालिका पुराण को कलि पुराण भी कहा जाता है। ऐसा माना जाता है कि कालिका पुराण का संकलन असम क्षेत्र में किया गया था। इसमें मार्कण्डेय का भी उल्लेख मिलता है।
- स्मृतियों में **सबसे प्राचीन** एवं **प्रामाणिक 'मनुस्मृति'** मानी जाती है। यह **शुंग काल** का मानक ग्रंथ है।
- जातक में **बुद्ध के पूर्वजन्म** की कहानी वर्णित है। जैन साहित्य को **आगम** कहा जाता है।
- आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया की स्थापना एलेक्जेंडर कनिंघम द्वारा 1861 में की गई थी इसी कारण एलेक्जेंडर कनिंघम को भारतीय पुरातत्त्व का पिता कहा जाता है।
- **'अर्थशास्त्र'** के लेखक **चाणक्य (कौटिल्य)** हैं। इससे मौर्यकालीन इतिहास की जानकारी प्राप्त होती है।
- हेरोडोटस को **'इतिहास का पिता'** कहा जाता है। इनकी प्रसिद्ध पुस्तक **हिस्टोरिका** में 5वीं शताब्दी ईसा.पूर्व. के भारत-फारस के संबंध का वर्णन है।
- प्लिनी ने नेचुरल हिस्टोरिया या नेचुरल हिस्ट्री पुस्तक लिखी।
- टॉलमी ने दूसरी शताब्दी में **'भारत का भूगोल'** नामक पुस्तक लिखी।
- प्रमुख चीनी लेखकों में **फाह्यान**, **संगयुन** (518 ई. में भारत आया) व **ह्वेनसांग** हैं। **ह्वेनसांग** का भ्रमण-वृत्तांत **'सि-यू-की'** नाम से प्रसिद्ध है। ह्वेनसांग ने **हर्षकालीन** समाज, धर्म तथा राजनीति के बारे में वर्णन किया है।
- परमार वंश के इतिहास के प्रमुख स्रोत उदयपुर प्रशस्ति, प्रबंधचिंतामणि, उज्जैन अभिलेख और नवसांहसाकचरित है।
- ह्वेनसांग के अध्ययन के समय नालंदा विश्वविद्यालय के कुलपति आचार्य **शीलभद्र** थे।
- अरबी लेखकों में **अलबरूनी** (पुस्तक: **किताब-उल-हिन्द**) और **इब्न बतूता** (पुस्तक: **रेहला/रिहूला**) प्रमुख हैं।
- पतंजलि के महाभाष्य में शुंगकालीन इतिहास पर प्रकाश डाला गया है।
- सोमदेव ने कथा सरित सागर लिखा है।
- भानुगुप्त का एरण स्तंभ अभिलेख से विधवादहन का साक्ष्य मिलता है।
- सर्वप्रथम भारतवर्ष का उल्लेख हाथीगुम्फा अभिलेख में मिलता है।

मध्य प्रदेश पीसीएस (MPPCS) तथा अधीनस्थ सेवाओं में पूछे गए एवं संभावित प्रश्न

1. परमार राजवंश के इतिहास पर प्रकाश डालने वाला स्रोत कौन-सा/से हैं?
   (a) पद्मगुप्त का नवसाहसांकचरित
   (b) मेरूतुंग की प्रबंध चिंतामणी
   (c) उदयपुर प्रशस्ति
   (d) उपर्युक्त सभी — **MPPCS (Pre), 2019**

2. भारतीय पुरातत्त्व का जनक किसे कहा जाता है?
   (a) एलेक्जेंडर कनिंघम
   (b) जॉन मार्शल
   (c) मार्टिमर व्हीलर
   (d) जेम्स प्रिंसेप — **MPPCS (Pre), 2017**

3. 'इंडिका' का लेखक कौन था?
   (a) प्लूटार्क (b) जस्टिन
   (c) हेरोडोटस (d) मेगास्थनीज
   MPPCS (Pre), 2015

4. अभिलेखों में किस शासक का उल्लेख 'पियदस्सी' एवं 'देवानामप्रिय' के रूप में किया गया है?
   (a) चंद्रगुप्त मौर्य (b) अशोक
   (c) समुद्रगुप्त (d) हर्षवर्धन
   MPPCS (Pre), 2015

5. सूची-I को सूची-II से सुमेलित कीजिये-

सूची-I (अभिलेख)	सूची-II (शासक)
A. हाथीगुंफा अभिलेख	1. खारवेल
B. नासिक अभिलेख	2. गौतमी बलश्री
C. प्रयाग अभिलेख	3. समुद्रगुप्त
D. ऐहोल अभिलेख	4. पुलकेशिन द्वितीय

	A	B	C	D
(a)	1	2	3	4
(b)	1	2	4	3
(c)	2	1	3	4
(d)	2	1	4	3

6. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिये-
   1. यूनान और रोम के लेखकों में सबसे प्राचीन टेसियस और हेरोडोटस के वृत्तांत हैं।
   2. फाह्यान और ह्वेनसांग अरब के यात्री थे जो गजनवी के साथ भारत आए थे।

   उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?
   (a) केवल 1 (b) केवल 2
   (c) 1 और 2 दोनों (d) न तो 1 और न ही 2

7. सूची-I को सूची-II से सुमेलित कीजिये-

सूची-I (रचना)	सूची-II (रचनाकार)
A. अष्टाध्यायी	1. पाणिनि
B. महाभाष्य	2. पतंजलि
C. मुद्राराक्षस	3. विशाखदत्त
D. अर्थशास्त्र	4. कौटिल्य

	A	B	C	D
(a)	2	1	3	4
(b)	1	2	3	4
(c)	4	3	2	1
(d)	3	4	2	1

8. अशोक के अभिलेख को सर्वप्रथम किसने पढ़ा?
(a) कनिंघम (b) मार्शल
(c) जेम्स प्रिंसेप (d) फेयर सर्विस

9. भारतीय इतिहास को जानने के साधनों में सम्मिलित तत्त्व है/हैं–
1. पुरातत्त्व-संबंधी साक्ष्य
2. साहित्यिक साक्ष्य
3. विदेशी यात्रियों के विवरण

कूट:
(a) केवल 1 और 2 (b) केवल 2 और 3
(c) केवल 1 और 3 (d) 1, 2 और 3

10. ह्वेनसांग का यात्रा वृत्तांत किस नाम से प्रसिद्ध है?
(a) फो-क्यू-की (b) यिन-तु
(c) सी-यू-की (d) इयान-क्यू-की

11. निम्नलिखित अभिलेखों में से किसमें विधवादहन का उदाहरण उल्लिखित है?
(a) समुद्रगुप्त का एरण पाषाण अभिलेख
(b) बुधगुप्त का एरण स्तंभ अभिलेख
(c) भानुगुप्त का एरण स्तंभ अभिलेख
(d) तोरमाण का एरण वराह अभिलेख

12. 'कथा सरित सागर' के लेखक कौन हैं?
(a) क्षेमेन्द्र (b) सोमदेव
(c) विशाखदत्त (d) धनपाल

13. निम्नलिखित में से कौन-सी कृति कौटिल्य की है?
(a) कादंबरी (b) अर्थशास्त्र
(c) रामायण (d) बृहत् कथा

14. सर्वप्रथम भारतवर्ष का उल्लेख किस अभिलेख में है?
(a) बोगजकोई अभिलेख (b) हाथीगुम्फा अभिलेख
(c) नासिक अभिलेख (d) ऐहोल अभिलेख

उत्तरमाला

1. (d)	2. (a)	3. (d)	4. (b)	5. (a)
6. (a)	7. (b)	8. (c)	9. (d)	10. (c)
11. (c)	12. (b)	13. (b)	14. (b)	

मध्य प्रदेश पीसीएस (MPPCS) मुख्य परीक्षा में पूछे गए एवं संभावित प्रश्न

1. ऋग्वेद **(10-20 शब्द)** MPPCS (Mains) 2015
2. कालिदास **(10-20 शब्द)** MPPCS (Mains) 2015
3. मेगास्थनीज **(10-20 शब्द)** MPPCS (Mains) 2014
4. प्रागैतिहासिक काल **(10-20 शब्द)**
5. मुद्राशास्त्र **(50 शब्द)**
6. हाथीगुंफा अभिलेख **(50 शब्द)**
7. इतिहास के पुनर्निर्माण में विभिन्न प्रकार के स्रोतों के सापेक्षिक महत्त्व का विवेचन कीजिये। **(200 शब्द)**
8. प्राचीन इतिहास के अध्ययन में विदेशी यात्रियों का विवरण किस प्रकार सहायक हुआ है? समझाइये। **(200 शब्द)**

2 प्रागैतिहासिक काल (Prehistoric Age)

पाषाण युग इतिहास का वह काल है जब मानव का जीवन पत्थरों (पाषाण) पर अत्यधिक आश्रित था। उदाहरण के लिये पत्थरों से शिकार करना, पत्थरों की गुफाओं में शरण लेना, पत्थरों से आग पैदा करना इत्यादि।

प्राचीन भारतीय इतिहास का विकास (Development of the Ancient Indian History)

भारतीय प्रागैतिहासिक काल के इतिहास को उद्घाटित करने का श्रेय **डॉ. प्राइमरोज** नामक एक अंग्रेज़ को जाता है। उन्होंने 1842 ई. में कर्नाटक के **रायचूर** ज़िले में लिंगसुगुर नामक स्थान पर प्रागैतिहासिक औज़ारों (पत्थर के औज़ार, तीर के फलक) की खोज की। प्राचीन भारत के इतिहास के विभिन्न कालों का वर्गीकरण एवं प्रमुख विशेषताएँ नीचे दिये गए चार्ट के माध्यम से प्रस्तुत की गई हैं-

प्राचीन भारत का इतिहास

प्रागैतिहासिक काल	आद्य ऐतिहासिक काल	ऐतिहासिक काल
❑ लिखित साक्ष्य उपलब्ध नहीं।	❑ लिखित साक्ष्य उपलब्ध।	❑ पुरातात्त्विक एवं साहित्यिक दोनों साक्ष्यों के आधार पर निर्धारण।
❑ पुरातात्त्विक साक्ष्य उपलब्ध।	❑ लेकिन लिपि गूढ़ एवं अपठनीय।	❑ उदाहरण : लगभग 600 ई.पू. के बाद का काल
❑ उदाहरण : पाषाणकाल	❑ उदाहरण : हड़प्पा सभ्यता	

पुरापाषाण काल	मध्यपाषाण काल	नवपाषाण काल
लगभग प्रारंभ से 10 हज़ार ई.पू.	लगभग 10 हज़ार ई.पू. से 5500 ई.पू. तक	लगभग 5500 ई.पू. से 3000 ई.पू. तक

पुरापाषाण काल : आखेटक और खाद्य संग्राहक (Palaeolithic Age : Hunter and Food Collector)

पुरापाषाण संस्कृति का उदय अभिनूतन युग (Pleistocene) में हुआ था। इस युग में धरती बर्फ से ढकी हुई थी। भारतीय पुरापाषाण काल को मानव द्वारा इस्तेमाल किये जाने वाले पत्थरों के औज़ारों के स्वरूप और जलवायु में होने वाले परिवर्तन के आधार पर निम्न तीन अवस्थाओं में बाँटा जाता है–

1. निम्न पुरापाषाण काल (प्रारंभ से 1 लाख ईसा.पूर्व.)
2. मध्य पुरापाषाण काल (1 लाख ईसा.पूर्व. से 40 हज़ार ईसा.पूर्व.)
3. उच्च पुरापाषाण काल (40 हज़ार ईसा.पूर्व. से 10 हज़ार ईसा.पूर्व.)

अपवादस्वरूप 40,000 ईसा पूर्व से 15,000 ईसा पूर्व के बीच दक्कन के पठार में मध्य पुरापाषाण काल तथा उच्च पुरापाषाण काल के औज़ार मिले हैं।

प्रमुख केंद्र *(Major Center)*

- **निम्न पुरापाषाण कालः** उत्तर-पश्चिम में सोहन (पाकिस्तान की सोहन नदी के किनारे) अथवा पेबुल-चॉपर चापिंग संस्कृति और दक्षिण भारत की हैंडएक्स क्लीवर (संस्कृति)। इसके अलावा भीमबेटका (म.प्र.), बेलन घाटी (उ.प्र.) इत्यादि।
- **मध्य पुरापाषाण कालः** बेतवा घाटी, सोन घाटी (म.प्र.), कृष्णा घाटी (कर्नाटक), बेलन घाटी (उ.प्र.), नेवासा (महाराष्ट्र) इत्यादि।
- **उच्च पुरापाषाण कालः** बेलन घाटी (उ.प्र.), रेनीगुंटा (आं.प्र.), सोन घाटी (म.प्र.), सिंहभूम (झारखंड) इत्यादि।

प्रमुख तथ्य *(Important Facts)*

- बेलन और नर्मदा घाटी में पाषाण युग की सभी अवस्थाएँ क्रमवार तरीके से विकसित हुई हैं।
- पुरापाषाण काल में मानव को कृषि का ज्ञान नहीं था। मानव बड़े जानवरों का शिकार कर खाद्य संग्रह करता था।
- मानव का स्थायी जीवन नहीं था और वह उत्पादक नहीं बल्कि उपभोक्ता था।
- गंगा, यमुना और सिंध के मैदानी इलाकों से पुरापाषाण युग की कोई जानकारी नहीं मिलती है।
- पुरापाषाण युग से पशुओं के जीवाश्म मिले हैं, परंतु मानव के नहीं। अपवादस्वरूप- नर्मदा नदी घाटी के हथनौरा (मध्य प्रदेश) नामक स्थान से एक मानव का कपाल मिला है, जिसका संबंध उच्च पुरापाषाण काल से स्थापित किया जाता है।
- प्रयागराज (इलाहाबाद) की बेलन घाटी स्थित लोंहदा नाला से उच्च पुराषाण काल की अस्थि निर्मित मातृ देवी की मूर्ति प्राप्त हुई है।
- मध्य पुरापाषाण काल में हथियार बनाने में क्वार्टज़ाइट की जगह जैस्पर, चर्ट इत्यादि चमकीले पत्थरों का प्रयोग शुरू हुआ। इस कारण इसे 'फलक-संस्कृति' भी कहते हैं।
- सामुदायिक जीवन का विकास उत्तर-पुरापाषाण काल में अधिक सुदृढ़ हुआ। अनेक व्यक्ति समूहों या कुलों में रहते थे, जिससे परिवार जैसी संस्था के उदय का मार्ग प्रशस्त हुआ। इस काल में लैंगिक आधार पर श्रम विभाजन प्रारंभ हो चुका था। गुफाओं के अतिरिक्त झोंपड़ियों का उपयोग आवास के रूप में किया गया। गुफा चित्रकला से ज्ञात होता है कि लोग पशु चर्म का उपयोग वस्त्र के रूप में करते थे।

3 हड़प्पा सभ्यता (Harappan Civilization)

हड़प्पा सभ्यता विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं में से एक थी। यह भारतीय उपमहाद्वीप में प्रथम नगरीय क्रांति को दर्शाती है। इसका क्षेत्रीय विस्तार, नगर-नियोजन तथा सामाजिक-सांस्कृतिक विविधता आदि इसे एक विशिष्ट सभ्यता के रूप में स्थापित करती है। यह **काँस्ययुगीन** सभ्यता थी। कार्बन डेटिंग पद्धति (C_{14}) के आधार पर इस सभ्यता का काल लगभग 2500 ईसा पूर्व–1750 ईसा पूर्व माना जाता है।

उद्भव एवं विस्तार (Emergence and Expansion)

नवीन शोध के अनुसार यह सभ्यता लगभग 8,000 साल पुरानी है। हड़प्पा सभ्यता के उद्भव को निम्नलिखित रूप से वर्गीकृत किया जाता है–

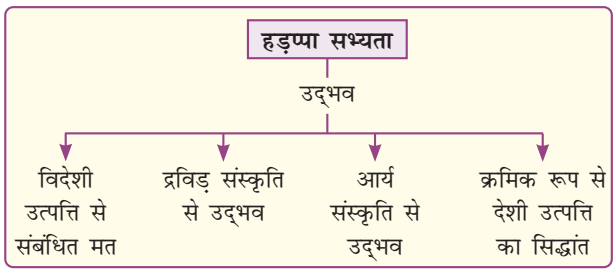

हड़प्पा सभ्यता का उद्भव *(Emergence of Harappan Civilization)*

हड़प्पा सभ्यता का उद्भव ताम्रपाषाणिक पृष्ठभूमि पर भारतीय उपमहाद्वीप के पश्चिमोत्तर क्षेत्र में हुआ जो वर्तमान में भारत, पाकिस्तान तथा अफगानिस्तान के कुछ क्षेत्रों में अवस्थित है।

आवश्यक साक्ष्यों का अभाव, जैसे साहित्यिक स्रोतों का अनुपलब्ध होना एवं पुरातात्त्विक स्रोतों द्वारा अपर्याप्त सूचना देना हड़प्पा सभ्यता के उद्भव की व्याख्या में एक बड़ी समस्या है। इस कारण से इस सभ्यता के उद्भव के संबंध में विभिन्न इतिहासकारों ने भिन्न-भिन्न मत व्यक्त किये हैं।

विदेशी उत्पत्ति से संबंधित मत

इस मत के प्रतिपादक **मार्टिमर व्हीलर** और **गार्डन चाइल्ड** जैसे इतिहासकार हैं। इसके लिये इन्होंने **सांस्कृतिक विसरण** का सिद्धांत प्रयुक्त किया। अन्नागार, गढ़ी तथा बुर्ज में प्रयुक्त शहतीरों के आधार पर मेसोपोटामिया से संबंध जोड़ा जाता है। उसी प्रकार बलूचिस्तान से प्राप्त मिट्टी के ढेरों की तुलना मेसोपोटामिया से प्राप्त जिगुरत (मंदिर) से की गई है। इनका मानना है कि मेसोपोटामिया से नगरीय सभ्यता के गुण भारत पहुँचे, लेकिन पुरातात्त्विक साक्ष्य इसके विपरीत हैं। हड़प्पाई मुहर, नगरीय सभ्यता, नगर नियोजन लिपि, औज़ार, मृद्भांड आदि मेसोपोटामिया और मिस्र से भिन्न हैं। हड़प्पाई लिपि चित्रात्मक थी तो मेसोपोटामियाई लिपि कीलनुमा।

अत: हड़प्पा सभ्यता की मौलिकता के आधार पर कहा जा सकता है कि इसका उद्भव महज़ विदेशी प्रेरणा से नहीं हुआ, हालाँकि इस पर विदेशी प्रभाव को पूरी तरह से नकारा भी नहीं जा सकता है।

द्रविड़ संस्कृति से उद्भव

कुछ विद्वानों का मत है कि आर्यों के आगमन से पूर्व द्रविड़ लोग इस क्षेत्र में निवास करते थे। यहाँ से प्राप्त भूमध्य-सागरीय प्रजाति के कंकालों को **'द्रविड़ों'** से जोड़ा गया है। साथ ही हड़प्पाई लिपि को भी द्रविड़ लिपि से जोड़ा गया है। इसके अलावा धार्मिक क्रियाकलाप, जैसे– लिंग पूजा, आराध्य देव की पूजा, मातृदेवी की पूजा, स्नान का महत्त्व आदि के आधार पर भी हड़प्पा संस्कृति पर द्रविड़ संस्कृति के प्रभाव को दर्शाने का प्रयास किया गया है। लेकिन आर्यों का आक्रमण सभ्यता के पतन के बाद का सिद्ध हो जाने के कारण केवल द्रविड़ संस्कृति से हड़प्पा के जुड़ाव का मत उचित प्रतीत नहीं होता है।

आर्य संस्कृति से उद्भव

इस सभ्यता की उत्पत्ति के संबंध में एक मत यह भी दिया जाता है कि आर्य लोग ही इस सभ्यता के जनक थे। इसके पक्ष में यह तर्क प्रस्तुत किया गया है कि दोनों सभ्यताओं का क्षेत्र सप्तसैंधव ही था। ऋग्वेद में इस क्षेत्र की तथा यहाँ की नदियों की चर्चा मिलती है। हाल ही में प्राप्त सिंधु मुहर पर घोड़े जैसी शक्ल को खोजने का दावा किया गया है। परंतु ठोस साक्ष्यों के अभाव में यह तर्क भी खंडित हो जाता है, क्योंकि आर्य लोग ग्रामीण तथा खानाबदोश जीवन जीते थे जबकि हड़प्पा सभ्यता नगरीकृत थी। वैदिक काल में इंद्र को पुरंदर अर्थात् किले का भंजक कहा गया है, जबकि तर्क के अनुसार उन्हें किले का निर्माता कहा जाना चाहिये था। वैदिक आर्य घोड़े तथा रथ का व्यापक प्रयोग करते थे। ऐसे में इस तर्क को भी मानना उचित नहीं लगता है।

क्रमिक रूप से देशी उत्पत्ति का सिद्धांत

क्रमिक उद्भव के सिद्धांत के परिप्रेक्ष्य में सामान्यत: दो दृष्टिकोण प्रचलित हैं। एक दृष्टिकोण के अनुसार यह सोथी संस्कृति से क्रमिक विकास को दर्शाता है तो दूसरे दृष्टिकोण के अनुसार यह ईरानी-बलूची ग्रामीण संस्कृति से क्रमिक विकास का परिणाम है। पहले दृष्टिकोण के पक्ष में ऐसा सिद्ध करने का प्रयास किया गया है कि हड़प्पा सभ्यता **बीकानेर** क्षेत्र की सोथी संस्कृति का विकसित रूप है। इस मत के पक्ष में दोनों के मृद्भांडों में समानता दिखाई गई है। बलूचिस्तान क्षेत्र की पहाड़ियों के ग्रामीण स्थल जिन्हें नाल संस्कृति के रूप में पहचाना गया है तथा सिंधु से मकरान तट तक की कुल्ली संस्कृति को प्राक्-हड़प्पा सभ्यता के रूप में स्वीकार किया गया है।

4 वैदिक काल (Vedic Age)

हड़प्पा सभ्यता के पतन के पश्चात् भारत में जो नवीन संस्कृति प्रकाश में आई, उसके विषय में हमें संपूर्ण जानकारी वेदों से मिलती है। इसीलिये इस काल का नामकरण **"वैदिक काल"** के नाम से हुआ है। वेदों में भी ऋग्वेद सर्वप्राचीन होने के साथ-साथ सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। चूँकि इस संस्कृति के प्रवर्तक आर्य लोग थे, इसलिये इसे कभी-कभी **आर्य सभ्यता या आर्य संस्कृति** का नाम भी दिया जाता है। यहाँ आर्य से अभिप्राय है **श्रेष्ठ, अभिजात, कुलीन** आदि। वैदिक काल अपने-आप में भारतीय इतिहास के लगभग हज़ार वर्ष (1500 ईसा पूर्व - 600 ईसा पूर्व) को समेटे हुए है। वैदिक काल का विभाजन दो भागों में किया गया है-

वैदिक काल (1500-600 ई.पू.)

- ऋग्वैदिक काल/पूर्व-वैदिक काल (1500-1000 ई.पू.)
- उत्तर-वैदिककाल (1000-600 ई.पू.)

ऋग्वैदिक काल (1500 ईसा पूर्व - 1000 ईसा पूर्व) [Rigvedic Age (1500 B.C. - 1000 B.C.)]

भारत में आर्यों (Aryans) के आरंभिक इतिहास के संबंध में जानकारी का प्रमुख स्रोत वैदिक साहित्य है। इस साहित्य के अलावा वैदिक युग (Vedic Age) के बारे में जानकारी का एक अन्य स्रोत पुरातात्त्विक साक्ष्य (Archaeological Evidences) हैं, लेकिन ये अपनी कतिपय त्रुटियों के कारण किसी स्वतंत्र अथवा निर्विवाद जानकारी का स्रोत न होकर साहित्यिक स्रोतों के आधार पर किये गए विश्लेषण की पुष्टि मात्र करते हैं।

मंडल	रचयिता
प्रथम मंडल	ऋषिगण
द्वितीय मंडल	गृत्समद
तृतीय मंडल	विश्वामित्र
चतुर्थ मंडल	वामदेव
पंचम मंडल	अत्रि
षष्ठ मंडल	भारद्वाज
सप्तम मंडल	वसिष्ठ
अष्ठम मंडल	कण्व एवं अंगिरस
नवम मंडल	पवमान अंगिरा (ऋषिगण)
दसवाँ मंडल	ऋषिगण

साहित्यिक स्रोत *(Literary Sources)*

ऋग्वैदिक काल की जानकारी का एकमात्र साहित्यिक स्रोत ऋग्वेद है। इसकी रचना अनुमानत: 1500 ईसा पूर्व से 1000 ईसा पूर्व के मध्य मानी जाती है। इसमें 10 मंडल तथा 1028 सूक्त हैं। इसके कुल 10 मंडलों में से 2 से 7 तक प्राचीनतम अंश हैं। प्रथम और दशम मंडल सबसे बाद में जोड़े गए मालूम होते हैं। ऋग्वेद के दूसरे से सातवें मंडल को गोत्र मंडल (Clan Division) के नाम से भी जाना जाता है क्योंकि इन मंडलों की रचना किसी गोत्र (Clan) विशेष से संबंधित एक ही ऋषि (Sage) के परिवार ने की थी। इस वेद में 'आर्य' शब्द का उल्लेख 36 बार हुआ है। ऋग्वेद की अनेक बातें **अवेस्ता** से मिलती हैं। **अवेस्ता** ईरानी भाषा का प्राचीनतम ग्रंथ है। दोनों ग्रंथों में बहुत से देवताओं और सामाजिक वर्गों के नाम भी मिलते-जुलते हैं।

वैदिक साहित्य : एक दृष्टि में

ऋग्वेद	-	यह सबसे प्राचीन वेद है। इसमें अग्नि, इंद्र, मित्र, वरुण आदि देवताओं की स्तुतियाँ संगृहीत हैं।
सामवेद	-	ऋग्वैदिक श्लोकों को गाने के लिये चुनकर धुनों में बाँटा गया और इसी पुनर्विन्यस्त संकलन का नाम 'सामवेद' पड़ा। इसमें दी गई ऋचाएँ उपासना एवं धार्मिक अनुष्ठानों के अवसर पर स्पष्ट तथा लयबद्ध रूप से गाई जाती थीं।
यजुर्वेद	-	इसमें ऋचाओं के साथ-साथ गाते समय किये जाने वाले अनुष्ठानों का भी पद्य एवं गद्य दोनों में वर्णन है। यह वेद यज्ञ संबंधी अनुष्ठानों पर प्रकाश डालता है।
अथर्ववेद	-	यह वेद जनसामान्य की सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थितियों को जानने के लिये इस काल का सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। इसमें लोक परंपराओं, धार्मिक विचार, विपत्तियों और व्याधियों के निवारण संबंधी तंत्र-मंत्र संगृहीत हैं। गोपथ ब्राह्मण अथर्ववेद से संबंधित है।
वेदत्रयी	-	ऋग्वेद, यजुर्वेद एवं सामवेद
संहिता	-	चारों वेदों का सम्मिलित रूप
उपनिषद	-	108 (प्रामाणिक 12)
पुराण	-	18
वेदांग	-	शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त (भाषा विगत), छंद और ज्योतिष

पुरातात्त्विक स्रोत *(Archaeological Sources)*

- **बोगज़कोई अभिलेख या मितन्नी अभिलेख (टर्की/एशिया माइनर) (1400 ईसा पूर्व):**

5 छठी शताब्दी ईसा पूर्व का काल (महाजनपद काल)
[Era of the Sixth Century B.C. (Mahajanpada Age)]

छठी शताब्दी ईसा पूर्व का काल भारतीय इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। भारत में इस शताब्दी में सभी क्षेत्रों में अपूर्व क्रांतियाँ हुईं और सर्वत्र एक नई चेतना का उदय हुआ। इसी शताब्दी में भारत में राज्यों के निर्माण की प्रक्रिया शुरू हुई और मगध में साम्राज्यवाद की नींव पड़ी। इस काल से पूर्व का काल राजनीतिक अंतर्विरोधों का काल था। नवीन धर्मों यथा बौद्ध धर्म एवं जैन धर्म का उदय इसी काल में हुआ। आर्थिक दृष्टि से भी यह क्रांति का युग था, फलतः द्वितीय नगरीकरण की प्रक्रिया भी इसी काल में सामने आई। लोक भाषाओं का उद्भव तथा सामाजिक-धार्मिक स्थिति में नियमन हेतु **सूत्र-साहित्य** की रचना भी इसी काल में हुई। इस बहुमुखी विकास के कारण ही इस काल का भारत के इतिहास में विशिष्ट स्थान है।

धार्मिक आंदोलनः जैन धर्म व बौद्ध धर्म (Religious Movement: Jainism and Buddhism)

ईसा पूर्व छठी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में मध्य गंगा के मैदान में अनेक धार्मिक संप्रदायों का उदय हुआ। लगभग सभी धार्मिक संप्रदायों का विरोध धार्मिक व्यवस्था के विरुद्ध था। एक दृष्टि से अगर देखा जाए तो छठी शताब्दी ईसा पूर्व के ऐसे धर्म सुधार आंदोलन की पृष्ठभूमि उत्तर-वैदिक काल के अंत तक तैयार हो चुकी थी। इस युग के लगभग 62 संप्रदाय (बौद्ध ग्रंथों के अनुसार) ज्ञात हैं, जिनमें बौद्ध धर्म (गौतम), जैन धर्म (महावीर), नियतिवाद (मक्खलि गोशाल) आदि प्रमुख हैं। इनमें से जैन धर्म तथा बौद्ध धर्म सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुए, जिन्होंने अपने उपदेशों तथा कार्यों से समाज को प्रभावित किया। इन्होंने जहाँ वैदिक धर्म की कुरीतियों तथा अतिवादी पंथ की आलोचना की, वहीं सामाजिक समस्या के समाधान का विकल्प भी प्रस्तुत किया।

संप्रदाय	संस्थापक
आजीवक	मक्खलिपुत्र गोशाल
घोर अक्रियावादी	पूरण कश्यप
यदृच्छावाद	आचार्य अजित केशकांबलिन
भौतिकवादी	पकुधकच्चायन
अनिश्चयवादी	संजय वेलट्ठपुत्त

उद्भव के कारण *(Cause of Emergence)*

वैदिकोत्तर काल में समाज स्पष्टतः चार वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र) में विभाजित था तथा उनके कर्त्तव्य भी अलग-अलग निर्धारित थे। इस बात पर ज़ोर दिया जाता था कि वर्ण जन्ममूलक है।

यह स्वाभाविक ही था कि इस तरह के वर्ण-विभाजन वाले समाज में तनाव पैदा हो। वैश्यों और शूद्रों में इसकी कैसी प्रतिक्रिया थी, यह जानने का कोई साधन नहीं है। परंतु क्षत्रिय लोग, जो शासक के रूप में काम करते थे, ब्राह्मणों के धर्म विषयक प्रभुत्व पर प्रबल आपत्ति करते थे। ब्राह्मणों के विशेषाधिकारों के विरुद्ध क्षत्रियों का खड़ा होना नए धर्मों के उद्भव का एक प्रमुख कारण बना। जैन धर्म के प्रमुख वर्द्धमान महावीर और बौद्ध धर्म के संस्थापक गौतम बुद्ध दोनों क्षत्रिय वंश के थे और दोनों ने ब्राह्मणों की मान्यता को चुनौती दी।

600 ईसा पूर्व के आस-पास मध्य गंगा के मैदानों में लोहे का प्रयोग होने लगा और लोग भारी संख्या में बसने लगे। लोहे के औज़ारों का प्रयोग करके जंगलों की सफाई, खेती आदि संभव हुई। लोहे के फाल वाले हलों पर आधारित कृषि-मूलक अर्थव्यवस्था में बैल का उपयोग ज़रूरी था, जबकि दूसरी तरफ वैदिक कर्मकांड के अनुसार यज्ञों में अंधाधुंध पशु मारे जाने लगे थे। इससे खेती में बाधा पहुँचती थी, अतः पशुवध को रोकना आवश्यक हो गया था।

वैश्य भी समाज में अपने महत्त्व को बढ़ाना चाहते थे। ऐसे में स्वाभाविक है कि वे किसी ऐसे धर्म की खोज में थे जहाँ उनकी सामाजिक स्थिति सुधरे। क्षत्रियों के अतिरिक्त वैश्यों ने महावीर और गौतम बुद्ध दोनों की उदारतापूर्वक सहायता की। इस प्रकार इन सारे कारकों ने मिलकर जैन धर्म और बौद्ध धर्म के उद्भव में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

जैन धर्म *(Jainism)*

जैन शब्द संस्कृत के 'जिन' शब्द से बना है, जिसका अर्थ विजेता होता है अर्थात् जिन्होंने अपने मन, वाणी एवं काया को जीत लिया हो। जैन धर्मावलंबियों का विश्वास है कि उनके सबसे महान धर्म उपदेशक महावीर के पहले तेईस और आचार्य हुए हैं जो तीर्थंकर कहलाते थे। परंतु इनमें से बाईस तीर्थंकरों की ऐतिहासिकता संदिग्ध है। अंतिम दो तीर्थंकर पार्श्वनाथ (23वें) एवं महावीर स्वामी (24वें) की ऐतिहासिकता को जैन धर्म के ग्रंथों में प्रमाणित किया गया है। जैन धर्म के मूल संस्थापक या प्रवर्तक **प्रथम** तीर्थंकर **ऋषभदेव** माने जाते हैं।

महावीर (Mahaveer)

- जैन परंपरा के अनुसार महावीर स्वामी का जन्म लगभग 599 ईसा पूर्व (कहीं-कहीं 540 ईसा पूर्व) में वज्जि संघ की राजधानी वैशाली (वर्तमान में बिहार का एक ज़िला) के निकट कुंडग्राम में ज्ञातृक क्षत्रिय कुल में हुआ था। उनके पिता सिद्धार्थ ज्ञातृक क्षत्रियों के संघ के प्रधान थे। उनकी माता का नाम त्रिशला था जो बिंबिसार के ससुर लिच्छवि नरेश चेटक या चेतक की बहन थीं। इस प्रकार महावीर के परिवार का संबंध मगध के राजपरिवार से भी था।

6

मौर्य साम्राज्य
(Maurya Empire)

मौर्य साम्राज्य की स्थापना भारतीय उपमहाद्वीप में साम्राज्य निर्माण की दिशा में पहला बड़ा प्रयोग था। **गंगाघाटी** को केंद्र बनाकर मौर्य साम्राज्य भारतीय उपमहाद्वीप के अधिकांश क्षेत्र में फैल गया। वस्तुतः माना जाता है कि इस साम्राज्य ने ही जंबूद्वीप की अवधारणा को मूर्त रूप दिया। मौर्य साम्राज्य का आधार चंद्रगुप्त मौर्य ने तैयार किया। विशाखदत्त की कृति मुद्राराक्षस से यह सूचना मिलती है कि अपने गुरु चाणक्य की सहायता से चंद्रगुप्त मौर्य ने सिकंदर की अनुपस्थिति से उत्पन्न अव्यवस्था का लाभ उठाते हुए उत्तर-पश्चिम में सिंधु नदी तथा व्यास नदी के बीच के भू-भाग पर अधिकार कर लिया। **खरोष्ठी** लिपि में अंकित **शाहबाजगढ़ी** और **मानसेहरा** के अभिलेखों से इस तथ्य की पुष्टि होती है।

स्रोत (Sources)

मौर्य साम्राज्य की जानकारी के लिये हमारे पास साहित्यिक और पुरातात्त्विक दोनों प्रकार के स्रोत उपलब्ध हैं।

साहित्यिक स्रोत *(Literary Sources)*

- **अर्थशास्त्रः** कौटिल्य द्वारा रचित यह पुस्तक मौर्यकालीन राजनीति और शासन के बारे में सूचना देती है। कौटिल्य (चाणक्य), चंद्रगुप्त मौर्य (मौर्य वंश का संस्थापक) का **प्रधानमंत्री** था।
- **मुद्राराक्षसः** चंद्रगुप्त मौर्य के शत्रुओं के विरुद्ध चाणक्य ने जो चालें चलीं, उनकी विस्तृत कथा **मुद्राराक्षस** नामक नाटक में है, जिसकी रचना **विशाखदत्त** ने की है। साथ ही यह पुस्तक चंद्रगुप्त के समय की सामाजिक-आर्थिक दशा पर भी प्रकाश डालती है।
- **इंडिकाः** मेगास्थनीज़ की इंडिका से हमें मौर्यों के विस्तृत प्रशासन तंत्र की सूचना मिलती है। इस पुस्तक से मौर्य काल के प्रशासन, समाज और अर्थव्यवस्था की जानकारी मिलती है।
- **बौद्ध साहित्यः** दीपवंश अशोक के बौद्ध धर्म को श्रीलंका तक फैलाने की भूमिका के बारे में बताते हैं। अन्य बौद्ध साहित्य (महावंश, दिव्यावदान) तथा जैन साहित्य (कल्पसूत्र, परिशिष्टपर्वन) से भी मौर्य साम्राज्य के विस्तार पर प्रकाश पड़ता है।
- पुराण मौर्य राजाओं और घटनाओं के बारे में बताते हैं।

पुरातात्त्विक स्रोत *(Archaeological Sources)*

पुरातात्त्विक स्रोतों में अभिलेखों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनमें अशोक के अभिलेख, इससे पूर्व चंद्रगुप्त मौर्य के अभिलेख, रुद्रदामन के जूनागढ़ अभिलेख महत्त्वपूर्ण हैं जिसमें मौर्यकालीन राजनीतिक, प्रशासनिक, धार्मिक, सामाजिक आदि दशाओं का वर्णन मिलता है।

अशोक पूर्व के अभिलेखों में सोहगौरा तथा महास्थान का अभिलेख है, जो चंद्रगुप्त मौर्य के काल से संबंधित हैं। इससे पता चलता है कि मौर्य काल में दुर्भिक्ष पड़ता था। अशोक के अभिलेखों से जहाँ एक ओर साम्राज्य की सीमा के निर्धारण में सहायता मिलती है, वहीं इनसे अशोक के प्रशासन एवं उसके धार्मिक विश्वास तथा उसके व्यक्तिगत जीवन के साथ ही उसकी आंतरिक एवं विदेश नीति जैसे अनेक महत्त्वपूर्ण बातों की भी सूचना मिलती है।

अशोक के परवर्ती अभिलेखों में **रुद्रदामन के जूनागढ़ अभिलेख** से मौर्यकालीन सिंचाई व्यवस्था पर प्रकाश पड़ता है। पहली बार इसी अभिलेख में चंद्रगुप्त के लिये **मौर्य** शब्द का प्रयोग हुआ है।

मौर्यकालीन स्थलों की खुदाई से अनेक ऐसी वस्तुएँ मिली हैं, जो इस काल की झाँकी प्रस्तुत करती हैं। **कुम्हरार (आधुनिक पटना)** से प्राप्त भवनों में लकड़ी एवं पकी ईंटों के प्रयोग का पता चलता है। **दीदारगंज (पटना)** एवं **बेसनगर** से प्राप्त मूर्तियाँ मौर्यकाल की लोक-कला की सूचना देती हैं।

भारतीय उपमहाद्वीप के विभिन्न मिले क्षेत्रों से अशोक के अभिलेखों के आधार पर यह अनुमान व्यक्त किया जाता है कि मौर्यों के अंतर्गत एक वृहद् साम्राज्य की स्थापना हुई, जो उत्तर-पश्चिम में हिंदुकुश से लेकर पूरब में बंगाल तथा दक्षिण में ब्रह्मगिरी तक विस्तृत था।

चंद्रगुप्त मौर्य, बिंदुसार, अशोक (Chandragupta Maurya, Bindusara, Ashoka)

चंद्रगुप्त मौर्य *(Chandragupta Maurya)*

मौर्य राजवंश की स्थापना **चंद्रगुप्त मौर्य** ने की। ब्राह्मण ग्रंथों के अनुसार चंद्रगुप्त निम्न कुल का था, जबकि बौद्ध ग्रंथों के अनुसार उसका संबंध नेपाल की तराई से लगे गोरखपुर में मौर्य नामक क्षत्रिय कुल से था। चंद्रगुप्त ने नंद वंश के अंतिम राजा धनानंद को अपदस्थ कर राजधानी पाटलिपुत्र पर अधिकार कर लिया और 322 ईसा पूर्व में मगध के राजसिंहासन पर बैठा। रुद्रदामन के गिरनार अभिलेख से ज्ञात होता है कि चंद्रगुप्त ने पश्चिम भारत में सौराष्ट्र तक का प्रदेश जीतकर अपने प्रत्यक्ष शासन के अधीन कर लिया। इस प्रदेश में **पुष्यगुप्त, चंद्रगुप्त मौर्य का राज्यपाल** था और उसने यहीं पर सुदर्शन झील का निर्माण करवाया था। यूनानी स्रोतों के अनुसार चंद्रगुप्त एवं सिकंदर के मध्य एक बार मुलाकात हुई थी। बाद में 301 ई. पू. में चंद्रगुप्त ने सेल्यूकस को युद्ध में हराकर पश्चिमोत्तर भारत को अपने अधिकार क्षेत्र में ले लिया था, परंतु अंत में दोनों में समझौता हो गया और चंद्रगुप्त से 500 हाथी लेकर उसके बदले में सेल्यूकस ने उसे पूर्वी अफगानिस्तान, बलूचिस्तान और सिंधु के पश्चिम के क्षेत्रों को दे दिया। अशोक के अभिलेख तथा जैन एवं तमिल स्रोतों से ज्ञात होता है कि उत्तरी कर्नाटक तक का क्षेत्र चंद्रगुप्त ने विजित किया था। इस प्रकार चंद्रगुप्त ने विशाल साम्राज्य स्थापित कर लिया जिसमें पूरे बिहार तथा उड़ीसा और बंगाल के बड़े भागों के अतिरिक्त,

7

मौर्योत्तर काल
(Post-Mauryan Age)

मौर्य साम्राज्य के पतन के पश्चात् भारत की राजनीतिक एकता नष्ट हो गई। मौर्य वंश के पतन और गुप्त वंश के उत्थान के बीच जो पाँच शताब्दियाँ बीतीं, उनमें बहुत राजनीतिक उथल-पुथल हुई। इस काल की राजनीतिक व्यवस्था का एक महत्त्वपूर्ण अभिलक्षण है- बहुराज्यीय व्यवस्था। इस व्यवस्था के अंतर्गत उत्तर भारत से दक्षिण भारत तक एक विशाल मौर्य साम्राज्य की जगह अनेक (छोटे-छोटे) राज्य दिखाई देते हैं। इनमें से कुछ राज्य, जैसे- कुषाण और सातवाहन, साम्राज्य के स्तर पर पहुँच गए और अधिकांश राज्य सीमित स्तर तक ही रहे। बहुराज्यीय व्यवस्था को प्रेरित करने वाले कारकों में प्रमुख थे- मौर्य साम्राज्य के विघटन के पश्चात् उत्तराधिकारी राज्यों का उद्भव (उदाहरण के लिये शुंग वंश), विदेशी आक्रमणों के परिणामस्वरूप स्थापित राज्य (उदाहरण के लिये इंडो-ग्रीक राजवंश, शक, कुषाण आदि), नए क्षेत्रों में राज्य निर्माण इत्यादि।

शुंग वंश, कण्व वंश, चेदि तथा सातवाहन वंश (Sung Dynasty, Kanva Dynasty, Chedi and Satavahana Dynasty)

शुंग वंश *(Sung Dynasty)*

मौर्य वंश के उत्तराधिकारी शुंग वंश हुआ। इस वंश का संस्थापक **पुष्यमित्र शुंग** था। हर्षचरित के अनुसार उसने अंतिम मौर्य शासक बृहद्रथ की हत्या कर मगध पर **शुंग वंश** की नींव डाली। उसे ब्राह्मणवंशीय माना जाता है। बौद्ध ग्रंथों में उसे बौद्ध विरोधी सिद्ध करने का प्रयास किया गया है। एक विवरण के अनुसार अशोक के द्वारा जिन 84 हज़ार स्तूपों का निर्माण कराया गया पुष्यमित्र शुंग ने उन्हें नष्ट कर दिया। किंतु यह महज़ साहित्यिक विवरण है, इस संबंध में पुरातात्त्विक विवरण कुछ और कहते हैं। इनके अनुसार पुष्यमित्र शुंग ने भरहुत स्तूप का निर्माण करवाया तथा साँची स्तूप में वेदिका स्थापित करवाई।

ऐसा माना जाता है कि पुष्यमित्र शुंग के काल में यवनों का निरंतर आक्रमण हो रहा था। उसने यवनों के विरुद्ध सफलता भी प्राप्त की थी तथा अयोध्या (धनदेव) अभिलेख के अनुसार पुष्यमित्र ने अपनी विजय के उपलक्ष्य में दो बार अश्वमेध यज्ञ संपन्न कराया था। यवन आक्रमण की चर्चा कालिदास कृत **'मालविकाग्निमित्रम्'**, पतंजलि के **'महाभाष्य'** आदि में मिलती है। लगभग 185 से 75 ईसा पूर्व के बीच शुंग वंश का शासन रहा था। इनके पूर्वज मूलतः उज्जैन से थे। शुंगों की राजधानी **विदिशा** तथा **पाटलिपुत्र** रही थी। पुराणों के अनुसार पुष्यमित्र शुंग के लगभग दस उत्तराधिकारियों ने शासन किया था। उसका निकटस्थ उत्तराधिकारी अग्निमित्र था जिसके सम्मान में कालिदास ने **मालविकाग्निमित्रम्** की रचना की। उसी का एक उत्तराधिकारी **भागभद्र** हुआ जिसके दरबार **(विदिशा)** में यूनानी शासक **एंटियालकीट्स** ने **हेलियोडोरस** को भेजा था। **हेलियोडोरस** ने ही **वासुदेव कृष्ण** के सम्मान में **विदिशा (बेसनगर)** में **गरुड़ ध्वज** की स्थापना की। इस वंश का अंतिम शासक **देवभूति** था। इसकी हत्या 75 ईसा पूर्व में **वासुदेव** ने कर दी और मगध की गद्दी पर **कण्व वंश** की स्थापना की।

महाकवि कालिदास द्वारा रचित मालविकाग्निमित्रम् नाट्य ग्रंथ से यह ज्ञात होता है कि पुष्यमित्र शुंग का पुत्र, अग्निमित्र विदिशा का राज्यपाल था। उसने विदर्भ राज्य के राज्यपाल का कार्यभार अपने मित्र माधवसेन को सौंपा।

कण्व वंश *(Kanva Dynasty)*

अंतिम शुंग शासक देवभूति की हत्या उसके अमात्य वासुदेव ने की। इसकी जानकारी हर्षचरित से प्राप्त होती है। वासुदेव ने जिस नवीन वंश की स्थापना की उसे कण्व वंश के नाम से जाना जाता है। यह भी ब्राह्मण वंश था। कण्व वंश के अंतर्गत चार शासक हुए। वासुदेव, भूमिमित्र, नारायण और सुशर्मन। लगभग 75 ईसा पूर्व से 30 ईसा पूर्व तक कण्व वंश का शासन रहा। पुराणों के अनुसार कण्वों ने 45 वर्षों तक शासन किया। अंतिम शासक **सुशर्मन** की हत्या 30 ईसा पूर्व में **सिमुक** ने कर दी और एक नवीन ब्राह्मण वंश **सातवाहन वंश** की नींव डाली।

चेदि वंश *(Chedi Dynasty)*

कलिंग के चेदि वंश से संबंधित जानकारी का प्रमुख स्रोत **खारवेल** का हाथीगुंफा अभिलेख है जो भुवनेश्वर के निकट उदयगिरी की पहाड़ियों से प्राप्त हुआ है। इस अभिलेख से पता चलता है कि चेदि वंश का संस्थापक **महामेघवाहन** नामक व्यक्ति था, यद्यपि यह पूर्ण रूप से स्पष्ट नहीं हुआ है। इसमें हमें खारवेल की विजयों का उल्लेख मिलता है, साथ ही इसी स्रोत से पता चलता है कि खारवेल इस वंश का महानतम शासक था। 24 वर्ष की आयु में 24 ईसा पूर्व में वह सिंहासन पर बैठा। अपने शासन के पाँचवे वर्ष उसने तनसुलि से एक नहर के जल को अपनी राजधानी लाने में सफलता अर्जित की। उसने मगध के एक शासक को भी हराने का दावा किया है, किंतु उस शासक की पहचान स्पष्ट नहीं है। खारवेल **जैन धर्म** को मानने वाला था। हाथीगुंफा अभिलेख से प्राप्त महत्त्वपूर्ण जानकारियाँ निम्नलिखित हैं-

- महापद्मनंद द्वारा कलिंग में नहर खुदवाए जाने का उल्लेख है अर्थात् यह **नहरों की जानकारी देने वाला प्रथम अभिलेखीय साक्ष्य** है।
- इस अभिलेख में जैन भिक्षुओं को ग्राम दान में दिये जाने का उल्लेख है। इस तरह जैन लोगों को ग्राम दान में दिये जाने का प्रथम अभिलेख यही है।
- हाथीगुंफा अभिलेख के अनुसार शासन सँभालने के दूसरे वर्ष ही इसने शातकर्णी को परास्त किया।

8

संगम काल
(Sangam Age)

ऐतिहासिक काल के आरंभ में तमिलों के संबंध में जो कुछ जानकारी प्राप्त होती है, उसका स्रोत संगम साहित्य है। 'संगम' से तात्पर्य है **'कवियों का सम्मेलन'** जो संभवत: किसी सामंत या राजा के आश्रय में आयोजित होता था। ऐसे सम्मेलन में रचित साहित्य **संगम साहित्य** के नाम से जाना जाता है। ज्ञात स्रोतों के अनुसार **पांड्य शासकों** के अधीन तमिल क्षेत्र में **तीन संगमों** का आयोजन किया गया।

संगम	अध्यक्ष	संरक्षक	स्थल
प्रथम	अगस्त्य ऋषि	पाण्ड्य शासक	मदुरै
द्वितीय	तोलकाप्पियर (संस्थापक अध्यक्ष अगस्त्य ऋषि)	पाण्ड्य शासक	कपाट्पुरम
तृतीय	नक्कीरर	पाण्ड्य शासक	उत्तरी मदुरै

प्रथम संगम **मदुरै** नामक स्थान पर आयोजित हुआ जिसकी अध्यक्षता **अगस्त्य ऋषि** ने की थी। अगस्त्य ऋषि को ही **दक्षिण भारत** में **आर्य संस्कृति के प्रसार** का श्रेय दिया जाता है। इस संगम के सदस्यों की संख्या 549 थी। इन्हें 89 पाण्ड्य शासकों का संरक्षण मिला। प्रथम संगम की कोई रचना उपलब्ध नहीं है। यह संगम सबसे अधिक दिनों तक चला। द्वितीय संगम का आयोजन **कपाट्पुरम** नामक स्थान पर हुआ था जिसके अध्यक्ष प्रारंभ में **अगस्त्य ऋषि** थे, परंतु बाद में उनका स्थान उनके शिष्य **तोलकाप्पियर** ने ले लिया। इस संगम में कुल 49 सदस्य थे। इसे 59 पाण्ड्य शासकों का संरक्षण मिला। इसमें भी अनेक ग्रंथों की रचना हुई किंतु तोलकाप्पियर द्वारा रचित तोलकाप्पियम को छोड़कर शेष सारी रचनाएँ नष्ट हो गईं। उसी प्रकार तृतीय संगम का आयोजन **उत्तरी मदुरै** में हुआ। इसकी **अध्यक्षता नक्कीरर** ने की थी। इसमें 49 सदस्य थे। इन्हें 49 पाण्ड्य राजाओं का संरक्षण मिला तथा कुल 449 कवियों को उनकी रचनाओं के प्रकाशन की अनुमति मिली। ईसा की आठवीं सदी में लिखी गई संगम की तमिल टीकाओं में कहा गया है कि तीनों संगम 9,990 वर्षों तक चलते रहे। उनमें 8,598 कवियों ने भाग लिया और 197 पाण्ड्य राजा उनके संपोषक हुए। प्रथम संगम 4,400 वर्षों तक, द्वितीय संगम 3,700 वर्षों तक, एवं तृतीय संगम लगभग 1,850 वर्षों तक चला। इन्हें अतिरंजना मात्र माना गया है, सिर्फ इतना ही कहा जा सकता है कि मदुरै में संगम राजाश्रय में आयोजित होते थे। इन सम्मेलनों द्वारा रचित संगम साहित्य जो उपलब्ध हैं, लगभग 300 ई. और 600 ई. के बीच संकलित किया गया।

संगम साहित्य (Sangam Literature)

अन्वेषण से ज्ञात होता है कि संगम साहित्य का विकास लगभग एक सहस्राब्दी के लंबे काल में हुआ तथा यह क्रमिक रूप में विकसित होता रहा।

पुस्तक एवं लेखक	
पुस्तक	**लेखक**
शिल्पादिकारम्	इलांगोआदिगल
मणिमेखलै	सीतलैसत्तनार
जीवकचिंतामणि	तिरुतक्कदेवर
तिरुमुरुकात्रुप्पदै	नक्कीरर

संगम साहित्य को मोटे तौर पर दो समूहों में बाँटा जा सकता है- **आख्यानात्मक** और **उपदेशात्मक**। आख्यानात्मक ग्रंथ **'मेलकणक्कु'** अठारह मुख्य ग्रंथ कहलाते हैं। इसके अंतर्गत आठ पद्य संकलन और दस ग्राम्य गीत शामिल हैं। यह साहित्य दक्षिण भारत के परिवेश में ही विकसित हुआ किंतु इस पर उत्तर भारत का भी प्रभाव माना जा सकता है। यद्यपि उत्तर का सीमित प्रभाव है। उदाहरण के लिये वर्ण-व्यवस्था की चर्चा एवं आठ प्रकार के विवाहों का उल्लेख आदि पर उत्तर भारत का प्रभाव रेखांकित किया जा सकता है।

उपदेशात्मक ग्रंथ **'पदिनेन कीलकणक्कु'** अठारह लघु ग्रंथ कहलाते हैं। इन ग्रंथों में **तिरुक्कुरल** तथा **नलदियार** प्रमुख हैं। इन ग्रंथों में **तिरुवल्लुवर** द्वारा रचित **'तिरुक्कुरल'** अथवा **'कुरल'** सबसे उत्कृष्ट रचना है। **कुरल को तमिल साहित्य का आधार स्तंभ** एवं लघुवेद कहा जाता है। इस रचना में राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, आचार शास्त्र और प्रेम जैसे विषय सम्मिलित हैं। संभवत: तिरुवल्लुवर चाणक्य, कात्यायन तथा मनु के विचारों से प्रभावित थे।

इन ग्रंथों के अलावा संगम काल में **महाकाव्यों** की भी रचना हुई थी। हालाँकि इन महाकाव्यों की गणना संगम साहित्य में नहीं होती, फिर भी ये महाकाव्य उस समय के समाज के विषय में जानकारी का एक महत्त्वपूर्ण स्रोत है। इस युग के कुछ प्रसिद्ध महाकाव्य हैं- **शिल्पादिकारम्**, **मणिमेखलै**, **जीवकचिंतामणि** आदि। इन साहित्यों पर उत्तर भारत का प्रभाव अपेक्षाकृत अधिक है। उदाहरण के लिये तमिल कवि जो रचनाएँ लिखते थे उनका आकार छोटा होता था किंतु उत्तर के प्रभाव में वे कुछ ऐसी रचनाएँ करने लगे जिनका आकार बहुत बड़ा है। संभवत: रामायण एवं महाभारत जैसे महाकाव्य के प्रभाव में उन्होंने ऐसी रचना की होगी।

शिल्पादिकारम्: इसे तमिल साहित्य का उज्ज्वलतम रत्न माना जाता है। एक मान्यता के अनुसार इसकी रचना चेर शासक शेनगुट्टवन के भाई **इलांगोआदिगल** ने की। यह एक प्रेमकथा है जिसमें कोलवन नामक एक अमीर अपनी धर्मपत्नी कन्नगी की उपेक्षा करके कावेरीपट्टनम की माधवी नामक वेश्या से प्रेम करता है।

9

गुप्त साम्राज्य
(Gupta Empire)

तीसरी सदी में उत्तर भारत में कुषाणों तथा दक्कन में सातवाहनों के प्रभुत्व के अवसान के साथ देश में राजनीतिक विघटन का दौर आरंभ हुआ। ज्ञात होता है कि कुषाणों के पतन के पश्चात् उत्तर भारत में सत्ता कुछ समय के लिये मुरुंडों के हाथों में आई। फिर मुरुंडों से गुप्तों ने सत्ता ग्रहण की।

संभवत: गुप्त लोग कुषाणों के अधीनस्थ शासक अथवा सामंत रहे थे। उनकी सफलता का महत्त्वपूर्ण कारण वह सैन्य तकनीक थी जो उन्होंने कुषाणों से ग्रहण की। बिहार और उत्तर प्रदेश में अनेकों जगह कुषाण पुरावशेषों के मिलने के ठीक बाद गुप्त पुरावशेष मिले हैं। गुप्तकालीन पुरावशेषों की प्राप्ति की दृष्टि से उत्तर प्रदेश सबसे समृद्ध स्थान सिद्ध होता है। संभवत: वे अपनी सत्ता का केंद्र प्रयाग को बनाकर पड़ोस के इलाकों में फैलते गए। गुप्त वंश के इतिहास की जानकारी के लिये साहित्यिक स्रोत के रूप में पुराण, स्मृतियाँ, बौद्ध ग्रंथ, विशाखदत्त कृत देवीचंद्रगुप्तम् एवं कालिदास की रचनाएँ प्रमुख हैं। विष्णु पुराण से गुप्त वंश के प्रारंभिक इतिहास की जानकारी मिलती है। **विशाखदत्त** की रचना **देवीचंद्रगुप्तम्** से गुप्त शासक रामगुप्त एवं चंद्रगुप्त द्वितीय के बारे में जानकारी मिलती है। विदेशी यात्रियों में चीनी यात्री फाह्यान का नाम प्रमुख है जो चंद्रगुप्त द्वितीय के शासनकाल में भारत आया था।

पुरातात्त्विक स्रोतों के रूप में समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति, चंद्रगुप्त द्वितीय के उदयगिरि गुहालेख (जिससे उसके साम्राज्य विजय का ज्ञान होता है), स्कंदगुप्त के भीतरी स्तंभलेख (जिससे हूण आक्रमण की जानकारी मिलती है) आदि प्रमुख हैं।

प्रारंभिक शासक (Early Rulers)

गुप्त राजवंश का प्रथम शासक श्रीगुप्त था। श्रीगुप्त के बाद उसका पुत्र घटोत्कच गुप्त वंश का दूसरा शासक हुआ।

चंद्रगुप्त-प्रथम (319 ई. – 350 ई.)
[Chandragupta-I (319 A.D. – 350 A.D.)]

गुप्त वंश का पहला प्रसिद्ध शासक **चंद्रगुप्त प्रथम** हुआ। वह ऐसा प्रथम शासक था जिसने **महाराजाधिराज** की उपाधि धारण की तथा स्वर्ण सिक्के जारी किये। इसके राज्यारोहण (319 – 320 ई.) के साथ **गुप्त संवत्** का आरंभ माना जाता है।

चंद्रगुप्त प्रथम ने गुप्त साम्राज्य का आरंभिक विस्तार किया, फिर अपनी स्थिति को मज़बूत करने के लिये उसने कूटनीतिक पद्धति का भी सहारा लिया। उसने उत्तर भारत के प्रमुख राज्य **लिच्छवि** की राजकुमारी **कुमार देवी** के साथ वैवाहिक संबंध स्थापित किया। इसी विवाह की स्मृति में स्वर्ण सिक्कों का निर्गमन किया।

समुद्रगुप्त (350 ई. – 375 ई.)
[Samudragupta (350 A.D. – 375 A.D.)]

चंद्रगुप्त प्रथम के पुत्र और उत्तराधिकारी **समुद्रगुप्त** ने गुप्त साम्राज्य का अपार विस्तार किया। इसको प्रयाग अभिलेख में लिच्छवी दौहित्र (लिच्छवीयों का नाती) कहा गया है।

समुद्रगुप्त एक महान साम्राज्यवादी था। उसने कई चरणों में अपना विजय अभियान पूरा किया। समुद्रगुप्त के विजय अभियान को पाँच चरणों में बाँटा जा सकता है। प्रथम चरण में उसने गंगा-यमुना दोआब के राज्यों का समूल नाश किया तथा प्रत्यक्ष रूप से अपने साम्राज्य में मिला लिया। द्वितीय चरण में उसने पंजाब के गणराज्य तथा कुछ सीमावर्ती राज्यों को जीता। जो गणराज्य मौर्य साम्राज्य के खंडहरों पर टिमटिमा रहे थे, उन्हें समुद्रगुप्त ने सदा के लिये बुझा दिया। तीसरे चरण में उसने विंध्य क्षेत्र में आटविक राज्यों पर विजय प्राप्त की। फिर चौथे चरण में उसने दक्षिण के बारह राज्यों को जीता। दक्षिण में उसने पल्लवों से अपनी प्रभुसत्ता स्वीकार कराई। अंतिम चरण में उत्तर-पश्चिम में कुछ विदेशी राज्यों को पराजित किया। उसकी बहादुरी एवं युद्ध कौशल के कारण ही **वी.ए. स्मिथ** ने उसे **भारत का नेपोलियन** कहा है। हालाँकि समुद्रगुप्त की विजयों की सूचना का आधार **हरिषेण** लिखित प्रयाग प्रशस्ति है, यहाँ ध्यान देने योग्य बात है कि हरिषेण एक दरबारी लेखक था। अत: प्रयाग प्रशस्ति में दिया गया विवरण अतिशयोक्तिपूर्ण भी हो सकता है। इन सीमाओं के बावजूद हम अध्ययन के स्रोत के रूप में इसे खारिज नहीं कर सकते, क्योंकि इसके द्वारा दिये गए कम-से-कम कुछ विवरण अन्य स्रोतों से परिपुष्ट हुए हैं। उदाहरण के लिये वाकाटक अभिलेख से कुछ विवरणों की परिपुष्टि हुई है।

अपनी विजयों के परिणामस्वरूप समुद्रगुप्त ने एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की जो उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में विंध्य पर्वत तक तथा पूर्व में बंगाल की खाड़ी से लेकर पश्चिम में पूर्वी मालवा तक विस्तृत था। समुद्रगुप्त ने एक बड़े क्षेत्र पर कब्ज़ा किया, किंतु उसका प्रत्यक्ष नियंत्रण सीमित क्षेत्रों पर ही रहा था। दूरवर्ती क्षेत्रों में उसने शासकों को शासन इस शर्त पर करने दिया कि वे अधीनता स्वीकारें (आत्मा-निवेदन), वैवाहिक संबंध बनाए (कन्योपायन-कन्यादान करें) और गुप्तों की गरुण मुद्रा को अपने राज्य में चलाएँ। समुद्रगुप्त स्वयं उच्चकोटि का विद्वान तथा विद्या का उदार संरक्षक था। अपने कुछ सिक्कों पर उसने स्वयं को **वीणा बजाते** हुए दिखाया है। उसने **'कविराज'** की उपाधि भी धारण की थी।

मध्य प्रदेश के सागर ज़िले में स्थित 'एरण' नामक स्थान से खंडित अवस्था में समुद्रगुप्त का लेख प्राप्त हुआ है। इस लेख में समुद्रगुप्त को राघव, पृथु आदि राजाओं से भी बढ़कर दानी बताया गया है। दूसरी ओर दर्जनपुर (विदिशा ज़िला) के लेख से यह ज्ञात होता है कि समुद्रगुप्त

10 गुप्तोत्तर साम्राज्य (Post-Gupta Age)

गुप्त वंश के पतन के बाद भारतीय प्रायद्वीप के राजनीतिक इतिहास में नवीन प्रवृत्ति का आविर्भाव हुआ। इस प्रवृत्ति में विकेंद्रीकरण और क्षेत्रीयता की भावना का प्रादुर्भाव था। 550 ई. के लगभग गुप्त साम्राज्य के विखंडित होने के साथ ही कई सामंतों एवं शासकों ने अपनी स्वतंत्रता घोषित करते हुए नवीन राजवंशों की स्थापना की।

प्रमुख राजवंश (Major Dynasty)

गुप्तोत्तर काल की एक अन्य महत्त्वपूर्ण गतिविधि भारत में इस्लाम धर्म का प्रवेश था, जो अरबों के माध्यम से हुआ। हर्षवर्धन के रूप में सशक्त शक्ति का उदय होने तक उत्तरी तथा पश्चिमी भारत की राजनीति में अनेक छोटे-छोटे राजवंशों का उदय हुआ।

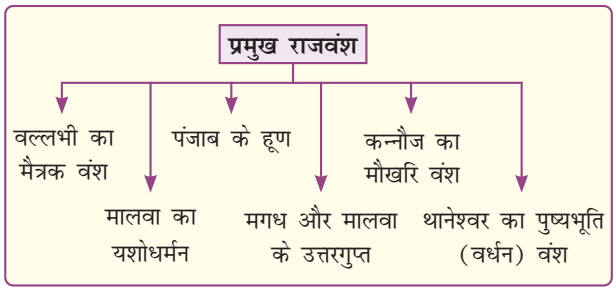

वल्लभी का मैत्रक वंश *(Maitraka Dynasty of Vallabhi)*

मैत्रक वंश का उदय गुजरात के वल्लभी में हुआ। इस वंश की स्थापना भट्टार्क नामक गुप्तकालीन सैनिक अधिकारी के द्वारा की गई। भट्टार्क के उत्तराधिकारियों ने सौराष्ट्र (काठियावाड़) में शक्तिशाली राज्य स्थापित किया। भट्टार्क के उत्तराधिकारियों में धरसेन, द्रोणसिंह और ध्रुवसेन प्रमुख शासक थे। इस वंश के शासकों ने अपनी **राजधानी वल्लभी** को बनाया। ध्रुवसेन द्वितीय हर्षवर्धन का समकालीन था। हर्ष ने अपनी पुत्री का विवाह ध्रुवसेन द्वितीय से कर मैत्रकों से संबंध स्थापित किये। ध्रुवसेन के काल में वल्लभी शिक्षा तथा व्यापार-वाणिज्य का प्रमुख केंद्र था। इसी समय चीनी यात्री ह्वेनसांग ने **वल्लभी की यात्रा** की थी। **ध्रुवसेन द्वितीय** इस वंश का सर्वाधिक शक्तिशाली शासक था। ध्रुवसेन द्वितीय के पश्चात् उसका पुत्र धरसेन चतुर्थ शासक बना। वह मैत्रक वंश का प्रथम शासक था जिसने 'परमभट्टारक', महाराजाधिराज, परमेशवर, चक्रवर्त्तिन' जैसी सार्वभौम नरेश की उपाधियाँ धारण की। मैत्रक वंश का अंतिम शासक शिलादित्य सप्तम था, जो 766 ई. में शासन कर रहा था। आठवीं शतीं के अंत तक मैत्रक वंश स्वतंत्र रूप से शासन करता रहा अंततः अरब आक्रमणकारियों ने मैत्रक राजा की हत्या कर वल्लभी को पूर्णतया नष्ट कर दिया।

मैत्रक वंश के शासक बौद्ध धर्म में आस्था रखते थे तथा उन्होंने बौद्ध विहारों को दान दिया। इस समय वल्लभी शिक्षा का प्रमुख केंद्र बन गया। इसके साथ ही वल्लभी व्यापार एवं वाणिज्य का प्रमुख केंद्र भी था।

वल्लभी विश्वविद्यालय

इतिहास का अवलोकन करने के उपरांत भारत का सबसे पुराना विश्वविद्यालय तक्षशिला तथा सबसे विख्यात विश्वविद्यालय नालंदा को माना जाता है, परंतु वल्लभी विश्वविद्यालय की अपनी अलग पहचान थी। ऐसा कहा जाता है कि यहाँ के विद्यार्थी प्रशासनिक पदों पर सबसे अधिक नियुक्त होते थे। चीनी यात्री इत्सिंग सातवीं शताब्दी में वल्लभी आया तथा इस शिक्षा केंद्र की प्रशंसा की। यहाँ के आचार्यों में 'गणभूति' और 'स्थिरमति' के नाम उल्लेखनीय हैं।

मालवा का यशोधर्मन *(Yashodharman of Malwa)*

मालवा के यशोधर्मन राज्य का उदय छठी शताब्दी के आरंभिक काल में हुआ। यशोधर्मन की उपलब्धियों का वर्णन हमें मंदसौर के दो अभिलेखों से प्राप्त होता है। मंदसौर प्रशस्ति यशोधर्मन का चित्रण उत्तर भारत के चक्रवर्ती शासक के रूप में करती है। यशोधर्मन द्वारा हूणों की पराजय उसकी महानतम उपलब्धियों में से एक थी। यशोधर्मन का राज्य पूर्व में लौहित्य (ब्रह्मपुत्र नदी) से लेकर पश्चिम में समुद्र तक तथा उत्तर में हिमालय से दक्षिण में महेंद्र पर्वत तक विस्तृत था। मंदसौर प्रशस्ति में उसे 'जनेंद्र' कहा गया।

यशोधर्मन का दूसरा नाम विष्णुवर्धन था। उसने राजाधिराज, परमेश्वर और नराधिपति की उपाधि धारण की थी। **वह शिवभक्त था।** अभिलेखों में उसके अच्छे शासन और सद्गुणों के कई उल्लेख हैं। उसकी तुलना मनु, भरत, अलर्क और मांधाता से की गई है। यशोधर्मन ने अपने शिलालेखों में अपने को औलिकरवंशी तथा सूर्यवंशी इक्ष्वाकु का वंशज कहा है। यशोधर्मन के शासन का अंत कब और कैसे हुआ तथा औलिकर वंश में और कौन-से शासक हुए, इस संबंध में अभी तक कुछ भी ज्ञात नहीं है। संभवतः यशोधर्मन के पश्चात् दशपुर क्षेत्र पर औलिकरों की राजनीतिक सत्ता कुछ काल तक बनी रही, छठी सदी के प्रारंभ में कलचुरी शंकरगण तथा बाद में मैत्रकों का प्रभाव इस क्षेत्र पर फैलने पर औलिकरों का पतन हो गया।

पंजाब के हूण *(Hoon of Punjab)*

हूण मध्य एशिया के निवासी थे। ये खानाबदोश और बर्बर थे। कालांतर में इनकी दो शाखाएँ हो गईं। हूणों की पूर्वी शाखा ने भारत पर कई आक्रमण किये। यह शाखा इतिहास में 'एक्थलाइट' अथवा 'श्वेत हूण' के नाम से जानी जाती है। चीनी साहित्य में हूणों को

11

दक्षिण भारत
(South India)

प्राचीन भारतीय इतिहास में गुप्तकाल के पतन के बाद राजनीतिक गतिविधियों के केंद्र में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। एक ओर मगध जो अभी तक राजनीति का प्रमुख केंद्र था, अब उसकी महत्ता समाप्त हो गई, वहीं दूसरी ओर आगामी 200 वर्षों तक संपूर्ण उत्तरी भारत अस्थिर रहा। यद्यपि हर्ष ने कुछ समय तक स्थिरता प्रदान करने का प्रयास किया था, परंतु लगभग 550-750 ई. के काल में राजनीति का केंद्र दक्षिण भारत हो गया, जो दो मुख्य राजवंशों चालुक्य एवं पल्लव का प्रमुख संघर्ष स्थल था।

चालुक्य वंश (Chalukya Dynasty)

चालुक्य वंश प्राचीन दक्षिण भारत का एक प्रसिद्ध क्षत्रिय राजवंश था। इस वंश ने 750 ई. तक (लगभग 200 वर्षों तक) दक्षिण भारत के इतिहास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। चालुक्य सातवीं सदी में अपने महत्तम विस्तार के समय में वर्तमान समय के पश्चिमी महाराष्ट्र, दक्षिणी मध्य प्रदेश, तटीय दक्षिणी गुजरात तथा पश्चिमी आंध्र प्रदेश में फैला हुआ था। चालुक्य लोग स्वयं को **ब्रह्मा, मनु या चंद्र के वंशज मानते थे।** अपनी वैधता व प्रतिष्ठा को अर्जित करने के लिये उन्होंने अपने पूर्वजों को अयोध्या का पूर्व शासक भी घोषित किया। आगे चलकर ये चार प्रमुख शाखाओं में बँट गए जिनमें बादामी (वातापी) के चालुक्य, कल्याणी के चालुक्य (पश्चिम), वेंगी के चालुक्य तथा अन्हिलवाड़ा (लाट) के सोलंकी चालुक्य शामिल थे।

सामान्य परिचय (General introduction)

वास्तविक संस्थापक : पुलकेशिन प्रथम (550 – 567 A.D)
प्रारंभिक राजधानी: बादामी या वातापी वर्तमान बीजापुर (कर्नाटक)
सबसे शक्तिशाली शासक: पुलकेशिन-द्वितीय

पुलकेशिन द्वितीय (Pulakeshin-II)

- इसने 609 ईसवी से 642 ई. तक शासन किया।
- उत्तरी कोंकण के मौर्य शासकों, मैसूर के गंग व वेंगी के पल्लवों को पराजित किया।
- कदंब, चोल, केरल, लाट, मालवा व गुर्जर प्रदेशों को जीतकर उत्तर में माही नदी तक अपने राज्य का विस्तार किया।
- नर्मदा तट पर हर्ष को पराजित कर **'परमेश्वर'** की उपाधि धारण की।
- उसने पर्सिया के शासक खुसरो द्वितीय के दरबार में एक दूतमंडल भी भेजा था।
- पुलकेशिन के बाद उसका पुत्र विक्रमादित्य-प्रथम शासक बना।
- इससे संबंधित जानकारी ऐहोल अभिलेख से मिलती है।

चालुक्यों की उत्पत्ति के संदर्भ में विवाद है। ऐसा माना जाता है कि वे प्रारंभ में कदंब राजाओं की अधीनता में कार्य करते थे। चालुक्यों की मूल शाखा बादामी या वातापी के शासकों ने छठी से आठवीं शताब्दी के मध्य शासन किया, तत्पश्चात् वेंगी व कल्याणी के चालुक्य प्रमुख शक्ति के रूप में उभरे। चालुक्य वंश के संस्थापक वैसे तो जयसिंह थे, परंतु वास्तविक **संस्थापक पुलकेशिन प्रथम** को माना जाता है। इस वंश का **सबसे शक्तिशाली शासक पुलकेशिन द्वितीय** था। अपने समकालीन पल्लव शासकों से संघर्ष के कारण चालुक्य शासकों की शक्ति क्षीण होने लगी और इनके सामंत शक्तिशाली बनने लगे। ऐसे ही एक सामंत **दंतिदुर्ग** ने वातापी के **चालुक्यों** के **शासन** को **समाप्त कर राष्ट्रकूट राजवंश की नींव डाली।**

चालुक्यकालीन राजनीतिक, आर्थिक व सामाजिक स्थिति *(Political, Economic and Social Status of Chalukyan)*

राजनीतिक और प्रशासनिक स्थिति

वातापी या बादामी के चालुक्यों ने लगभग दो शताब्दियों तक दक्षिण भारत पर शासन किया। वे मूलत: धर्मनिष्ठ हिंदू थे और उन्होंने धर्मशास्त्रों के अनुसार शासन किया। प्राचीन शास्त्रों में विहित राजतंत्र प्रणाली इस काल में भी सर्वप्रचलित शासन पद्धति थी। चालुक्यकालीन प्रशासन का केंद्र सम्राट होता था। उन्होंने अश्वमेध, वाजपेय आदि अनेक वैदिक यज्ञों का अनुष्ठान किया। राजपद वंशानुगत होता था। राजा प्रशासन की संपूर्ण समस्याओं में स्वयं रुचि लेता था। युद्ध के समय राजा स्वयं सेना का संचालन करता था तथा इस काल में रानियों की भूमिका भी महत्त्वपूर्ण थी, जैसे–कीर्तिवर्मन द्वितीय की महारानी महादेवी उसके साथ रक्तपुर के स्कंधावार में उपस्थित थी।

चालुक्य लेखों में किसी मंत्रिपरिषद का उल्लेख नहीं मिलता है। प्रशासन में मुख्यत: राजपरिवार के सदस्य ही शामिल थे। राजा अपने परिवार के विभिन्न सदस्यों को उनकी योग्यतानुसार प्रशासनिक पदों पर नियुक्त करता था, जैसे– पुलकेशिन द्वितीय ने अपने भाई विष्णुवर्धन को वेंगी का गवर्नर नियुक्त किया था। राजा के आदेश प्राय: मौखिक ही होते थे, जिन्हें सचिव लिपिबद्ध करके संबंधित अधिकारियों या व्यक्तियों के पास भेजते थे।

- सामंत (तत्पादपद्मोपजीवी) अपने-अपने क्षेत्रों में स्वतंत्रतापूर्वक शासन करते थे। इनकी अलग राजधानी होती थी, जहाँ ये अपना दरबार लगाते थे। इनके अपने मंत्री तथा अन्य अधिकारी भी होते थे।
- नगर को पट्टण या पुर कहा जाता था। बड़े नगरों में तीन बड़ी-बड़ी सभाएँ होती थीं, जिनमें प्रत्येक को 'महाजन' कहा जाता था तथा नगर सभाओं की स्थिति निगमों जैसी थी। इन्हें संपत्ति का क्रय-विक्रय करने तथा छोटे-मोटे विवादों का निपटारा करने का अधिकार था।

12 पूर्व मध्यकालीन भारत
(Pre-medieval India)

भारतीय इतिहास में काल विभाजन एक बहुत बड़ी समस्या रही है। सामान्यत: 8वीं से 11वीं शताब्दी के काल को पूर्व मध्यकाल की संज्ञा दी जाती है। राजनीतिक विकेंद्रीकरण, छोटे-छोटे राज्यों का उदय एवं उनका आपसी संघर्षरत होना जहाँ इस काल की राजनीतिक स्थिति को दर्शाता है, वहीं बंद अर्थव्यवस्थाँ, सामंती सामाजिक जीवन, धर्म में विविधता इस काल की प्रमुख आर्थिक, सामाजिक एवं धार्मिक विशेषता थी।

पाल, गुर्जर-प्रतिहार एवं राष्ट्रकूट वंश (Pala, Gurjar-Pratihar and Rashtrakut Dynasty)

आठवीं से दसवीं शताब्दी तक का समय भारतीय इतिहास में राजसत्ताओं के त्वरित उत्थान-पतन का काल रहा। इस समय उत्तर भारत और दक्कन में कई शक्तिशाली साम्राज्यों का उदय हुआ। छठी शताब्दी के अंतिम चरण में गुप्त साम्राज्य के पतन के साथ ही इतिहास के एक महान युग का अंत हो गया। इसके साथ ही 1000 वर्षों से राजनीति का केंद्र रहे मगध का महत्त्व भी हमेशा के लिये समाप्त हो गया। संक्रमण के इस काल में उत्तर भारत में कन्नौज राजनीति के आकर्षण का नया केंद्र बनकर उभरा। सातवीं सदी में हर्ष के राज्यारोहण के बाद कन्नौज की सत्ता अपने चरम उत्कर्ष पर थी। हर्ष के शासनकाल तक उत्तर भारत की राजनीतिक सत्ता अक्षुण्ण बनी रही, परंतु 647 ई. में हर्ष की मृत्यु के साथ ही उत्तर भारत में राजनीतिक अराजकता पैदा हो गई। इसी पृष्ठभूमि में नए राजवंशों व राज्यों को उदय होने का अवसर मिला।

कन्नौज पर आधिपत्य को लेकर तीन गुटों में कई वर्षों तक संघर्ष चलता रहा। ये तीन गुट थे- पाल, गुर्जर-प्रतिहार तथा राष्ट्रकूट। इनमें से पाल साम्राज्य का नवीं सदी के मध्य तक पूर्वी बंगाल में बोलबाला रहा। पश्चिमी भारत और ऊपरी गंगा की घाटी में दसवीं सदी तक प्रतिहार साम्राज्य की तूती बोलती थी। उधर दक्कन में राष्ट्रकूटों का वर्चस्व था, जो समय-समय पर उत्तर और दक्षिण भारत के प्रदेशों पर भी अपना नियंत्रण स्थापित कर लेते थे। यद्यपि इन तीनों साम्राज्यों के बीच संघर्ष चलता रहा, तथापि इनमें से प्रत्येक ने काफी बड़े-बड़े क्षेत्रों को स्थिरतापूर्ण जीवन की परिस्थितियाँ प्रदान कीं और साहित्य तथा कला को संरक्षण दिया। तीनों में सबसे दीर्घायु राष्ट्रकूट साम्राज्य साबित हुआ। इस साम्राज्य ने न केवल विपुल शक्ति अर्जित की, बल्कि आर्थिक व सांस्कृतिक क्षेत्रों में उत्तर और दक्षिण के बीच सेतु का काम भी किया। यहाँ हम पाल, गुर्जर-प्रतिहार तथा राष्ट्रकूट राजवंशों के विषय में क्रमश: अध्ययन करेंगे।

पाल वंश *(Pala Dynasty)*

पाल वंश की स्थापना संभवत: 750 ई. के आस-पास बंगाल (गौड़) में हुई थी। **शशांक** की मृत्यु के पश्चात् लगभग एक शताब्दी तक बंगाल में अराजकता और अव्यवस्था का माहौल बना हुआ था। उस क्षेत्र में फैली अराजकता से तंग आकर वहाँ के लोगों ने **गोपाल** को शासक चुना। यह पहला राजा था, जिसका जनता के द्वारा निर्वाचन हुआ। उसने गौड़ में फिर से सुव्यवस्था स्थापित की तथा करीब दो दशकों तक शासन किया। वह बौद्ध धर्म का अनुयायी था तथा उसने ओदंतपुरी महाविहार की स्थापना भी की थी। 770 ई. में उसकी मृत्यु के बाद उसका पुत्र **धर्मपाल** राजा बना।

धर्मपाल ने बंगाल पर 770 से 810 ई. तक शासन किया। उसने सर्वप्रथम राज्य का विस्तार किया। कुछ समय के लिये उसने कन्नौज पर भी अपना अधिकार स्थापित किया था तथा उसने **'उत्तरापथस्वामिन्'** की उपाधि धारण की। वह बौद्ध धर्मानुयायी था, किंतु वह अन्य धर्मों के प्रति भी सहिष्णु था। बिहार और आधुनिक पूर्वी उत्तर प्रदेश पर अपना-अपना नियंत्रण स्थापित करने के लिये पालों और प्रतिहारों के मध्य संघर्ष चलता रहा। यद्यपि बंगाल के साथ-साथ बिहार पर पालों का ही अधिक समय तक नियंत्रण कायम रहा।

धर्मपाल का उत्तराधिकारी उसका पुत्र **देवपाल** अगला शासक बना। देवपाल ने 810 से 850 ई. तक शासन किया तथा इसने भी साम्राज्य विस्तार की नीति जारी रखी। उसने मुंगेर को अपनी राजधानी बनाया तथा प्रागज्योतिषपुर (असम) और उड़ीसा के कुछ हिस्सों को अपने साम्राज्य में मिला लिया। संभवत: आधुनिक नेपाल के एक हिस्से पर भी पाल प्रभुत्व स्थापित हो गया तथा उसने तिब्बत तथा दक्षिण-पूर्व एशिया के शैलेंद्र साम्राज्य (सुमात्रा) से अपना सांस्कृतिक एवं व्यापारिक संबंध बनाए रखा। सुमात्रा के एक शासक, बलपुत्रदेव ने उससे नालंदा में एक मठ की स्थापना की अनुमति भी प्राप्त की। अरब यात्री सुलेमान ने देवपाल की शक्ति का वर्णन एवं साम्राज्य विस्तार की जानकारी दी है। देवपाल की मृत्यु के बाद पाल वंश का पतन शुरू हो गया। उसके उत्तराधिकारी **नारायण पाल** को प्रतिहार शासक मिहिरभोज तथा महेंद्रपाल के हाथों पराजय का सामना करना पड़ा तथा उसने, उनके हाथों मगध का क्षेत्र भी खो दिया। उसके उत्तराधिकारी **राज्यपाल** ने राष्ट्रकूटों के साथ वैवाहिक संबंध स्थापित करके, खोए हुए क्षेत्र को पुन: प्राप्त किया।

पाल वंश का पुनरुद्धार **महिपाल** के द्वारा हुआ, किंतु चोल शासक राजेंद्र प्रथम के आक्रमण (1022-23 ई.) से राज्य को आर्थिक एवं सामाजिक क्षति उठानी पड़ी। महिपाल का उत्तराधिकारी **नयपाल** था, जिसने प्रारंभ में कलचुरियों से युद्ध किया, किंतु बाद में कलचुरी राजकुमारी से विवाह कर लिया।

नयपाल की मृत्यु के बाद अव्यवस्था फैल गई, जिसका अंत **रामपाल** ने किया। उसने उत्तरी बंगाल, असम, उड़ीसा पर पुन: नियंत्रण स्थापित किया, किंतु सेन शासकों के हाथों पूर्वी बंगाल तथा मिथिला (कर्नाटों के हाथों) को खो दिया। संध्याकर नंदी के रामचरित का नायक वही है।

खंड

B

मध्यकालीन भारत

(मध्य प्रदेश के विशेष संदर्भ सहित)

13 मध्यकालीन भारतीय इतिहास के स्रोत
(Sources of Medieval Indian History)

अतीत की घटनाओं के संबंध में जानकारी के प्रमुख स्रोतों में पुरातात्त्विक एवं साहित्यिक स्रोत आते हैं, जिसमें मध्यकालीन भारतीय इतिहास के अध्ययन के मौलिक स्रोत 'साहित्यिक स्रोत' ही हैं। इसके अंतर्गत समकालीन ऐतिहासिक रचनाएँ, जीवनियाँ, प्रशासन संबंधी रचनाएँ, यात्रा वृत्तांत आदि को शामिल किया जाता है। यद्यपि प्राचीन भारत में क्रमबद्ध इतिहास लेखन परंपरा का अभाव था परंतु मध्यकाल में इसे विकसित करने का श्रेय **तुर्क** और **मुगल** विद्वानों को प्राप्त है। मध्यकालीन भारतीय इतिहास की जानकारी के साहित्यिक स्रोतों को मुख्य रूप से दो भागों में बाँट सकते हैं- सल्तनतकालीन रचनाएँ और मुगलकालीन रचनाएँ।

ऐतिहासिक स्रोतों का वर्गीकरण (Classification of Historical Sources)

सल्तनतकालीन प्रमुख रचनाएँ *(Major Compositions of Sultanate Period)*

- **किताब-उल-हिंद:** इस ग्रंथ के लेखक **अलबरूनी** हैं। यह अरबी भाषा में लिखा गया है और इसका अंग्रेज़ी अनुवाद **'सचाऊ'** ने, जबकि हिंदी अनुवाद **'रजनीकांत शर्मा'** ने किया है। यह 11वीं शताब्दी की भारतीय सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक जानकारी का प्रमुख स्रोत है। अलबरूनी द्वारा भारतीय विज्ञान पर 'किताब-फी-ताहकीक' नामक पुस्तक लिखी गई।
- **अलबरूनी** ख्वारिज़्म (खीवा) का निवासी था, जिसने महमूद गज़नवी के भारत आक्रमण के दौरान भारत की यात्रा की थी। उसने अपनी पुस्तक के लेखन में कई प्राचीन भारतीय ग्रंथों की सहायता ली थी। पुराणों का अध्ययन करने वाला वह प्रथम मुसलमान था।
- **तबकात-ए-नासिरी:** इस ग्रंथ की रचना **'मिनहाज-उस-सिराज'** ने फारसी भाषा में की थी। इस पुस्तक से मोहम्मद गोरी की भारत विजय तथा दिल्ली सल्तनत की स्थापना की प्रत्यक्ष जानकारी मिलती है।
- **मिनहाज-उस-सिराज** मध्य एशिया का निवासी था जो इल्तुतमिश के समय नासिरुद्दीन कुबाचा के अभियान के दौरान भारत आया था। उसने अपनी यह पुस्तक नासिरुद्दीन महमूद को सौंपी। सुल्तान बलबन ने उसे अपना काज़ी भी नियुक्त किया था।
- **शाहनामा:** यह फारसी भाषा का एक महाग्रंथ है जिसकी रचना **फिरदौसी** ने महमूद गज़नवी के शासनकाल में की थी। फिरदौसी ने इस ग्रंथ को 30 साल की मेहनत के बाद सन् 1010 ई. में पूर्ण किया था और इसे महमूद गज़नवी को ही समर्पित किया था। इस ग्रंथ से महमूद के शासनकाल एवं उसके चरित्र-व्यवहार की जानकारी मिलती है।
- **तारीख-ए-फिरोज़शाही (फतवा-ए-जहाँदारी):** इस पुस्तक के लेखक **"जिआउद्दीन बरनी"** हैं। उन्होंने फारसी भाषा में इस पुस्तक की रचना की थी। इसमें बलबन से लेकर फिरोज़शाह तुगलक के शासन तक नौ शासकों के शासनकाल का उल्लेख है। इस पुस्तक से अलाउद्दीन खिलजी की बाज़ार नियंत्रण प्रणाली एवं मुहम्मद बिन तुगलक की नीतियों के विषय में विस्तृत जानकारी मिलती है।
- **'जियाउद्दीन बरनी'** का जन्म 1283 ई. में दिल्ली के सैय्यद परिवार में हुआ था। वह मुहम्मद बिन तुगलक का मित्र एवं राजदरबार से भी संबंधित था, परंतु मुहम्मद बिन तुगलक की नीतियों से तंग आकर वह उसका विरोधी बन गया। उसके अनुसार फिरोज़शाह तुगलक सल्तनत का सर्वश्रेष्ठ शासक, जबकि मुहम्मद बिन तुगलक **दयालु तथा रक्त पिपासु** शासक था।
- **फुतुह-उस-सलातीन:** इस पुस्तक का लेखक **ख्वाज़ा अब्दुल्लाह मलिक इसामी** था जिसने बहमनी वंश के संस्थापक अलाउद्दीन बहमनशाह के संरक्षण में इसे पूर्ण किया। यह पुस्तक बहमनशाह को समर्पित है। इस पुस्तक से मुहम्मद बिन तुगलक की नीतियों तथा 13वीं शताब्दी के दक्षिण भारत की जानकारी मिलती है।
- **इसामी** मुहम्मद बिन तुगलक का समकालीन था। राजधानी परिवर्तन के समय वह दिल्ली से दौलताबाद (देवगिरी) आ गया।
- **तारीख-ए-मुबारकशाही:** इस पुस्तक का लेखक **याहिया बिन अहमद सरहिंदी** था जिसने सैय्यद वंश के शासक मुबारक शाह के संरक्षण में इसकी रचना की। यह पुस्तक सैय्यद वंश का राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास जानने का महत्त्वपूर्ण स्रोत है। सरहिंदी ने इस पुस्तक को सुल्तान मुबारकशाह को समर्पित किया।
- **रेहला:** इस पुस्तक की रचना अफ्रीकी यात्री (**मोरक्को** के निवासी) **इब्नबतूता** ने अरबी भाषा में की थी। यह एक यात्रा वृत्तांत है। चूँकि इब्नबतूता ने **मुहम्मद बिन तुगलक** के शासनकाल में सन् 1333 ई. में भारत की यात्रा की थी, इसलिये इस ग्रंथ से मुहम्मद बिन तुगलक के व्यक्तिगत जीवन, उसके विचार और प्रशासनिक योजनाओं आदि की जानकारी मिलती है। यह ग्रंथ 14वीं शताब्दी के भारत की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक स्थिति जानने का महत्त्वपूर्ण स्रोत है।
- **मुखजान-ए-अफगानी:** इस पुस्तक की रचना **नियामत उल्लाह** ने की थी। इस पुस्तक से लोदी वंश के शासकों एवं उस काल की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक स्थिति की जानकारी प्राप्त होती है। नियामत उल्लाह ने लोदी वंश एवं समकालीन घटनाओं का विस्तृत रूप से वर्णन किया है।
- **इंशा-ए-माहरू:** इस पुस्तक की रचना **ऐनुल-मुल्क** ने की थी जो तुगलक काल में मुल्तान प्रांत का सूबेदार था। वास्तव में यह ऐनुल-मुल्क के पत्रों का संकलन है जिनका आदान-प्रदान तुगलक सुल्तानों और उसके मध्य हुआ था, इसलिये इस पुस्तक से तुगलक

14 भारत में तुर्कों का आगमन
(Arrival of Turks in India)

तुर्कों के आक्रमण के पूर्व अरबों ने भारत पर आक्रमण किया, किंतु भारत में मुस्लिम शासन की स्थापना का श्रेय तुर्कों को जाता है। मुस्लिम आक्रमण के समय भारत में एक बार पुनः विकेंद्रीकरण तथा विभाजन की परिस्थितियाँ सक्रिय हो उठीं। तुर्क आक्रमण भारत में कई चरणों में हुए। प्रथम चरण का आक्रमण 1000 से 1027 ई. के बीच गज़नी के शासक महमूद गज़नवी द्वारा किया गया। इसके पूर्व सुबुक्तगीन (महमूद के पिता) की लड़ाई हिंदूशाही शासकों के साथ हुई थी, किंतु उसका क्षेत्र सीमित था। भारत के गुजरात क्षेत्र तक महमूद ने अपना शासन स्थापित किया, लेकिन उत्तरी भारत के शेष क्षेत्र अभी तुर्क प्रभाव से बाहर थे। कालांतर में गौर के शासक शिहाबुद्दीन मोहम्मद गोरी ने पुनः भारत में सैनिक अभियान प्रारंभ किया। 1175 से 1206 ई. के बीच उसने और उसके दो प्रमुख सेनापतियों (ऐबक और बख्तियार खिलजी) ने गुजरात, पंजाब से लेकर बंगाल तक के क्षेत्र को जीतकर सत्ता स्थापित की। किंतु 1206 ई. में गोरी की मृत्यु के पश्चात् तुर्क साम्राज्य कई हिस्सों में बँट गया और आगे चलकर भारत में दिल्ली सल्तनत के नाम से तुर्क साम्राज्य स्थापित हुआ।

तुर्कों के आक्रमण से पूर्व भारत की राजनीतिक स्थिति (Political Situation of India Before the Invasion of Turks)

- मुल्तान तथा सिंध दोनों क्षेत्र 8वीं सदी के आरंभ में ही अरबों द्वारा विजित कर लिये गए थे। सिंध में अरबों की सत्ता के अवशेष अब भी बचे हुए थे।
- **हिंदूशाही** राजवंश उत्तर-पश्चिम भारत का विशाल हिंदू राज्य था, जिसकी सीमा कश्मीर से मुल्तान तक तथा चिनाब नदी से लेकर हिंदुकुश तक फैली हुई थी। महमूद ने इसकी राजधानी **वैहिंद** पर आक्रमण कर दिया। यहाँ का शासक **जयपाल** था, जिसने पराजित होने पर आत्महत्या कर ली।
- उत्तरी भारत में स्थित कश्मीर का क्षेत्र महमूद गज़नवी के आक्रमण के समय से राजनीतिक अव्यवस्था से ग्रसित था। यहाँ की वास्तविक शासिका क्षेत्रगुप्त की पत्नी **दीद्दा** थी।
- इसके अतिरिक्त मुस्लिम आक्रमण के समय उत्तरी भारत में अनेक छोटे-छोटे राज्यों का अस्तित्व था। जैसे– सिंध, मुल्तान, पंजाब, दिल्ली, बंगाल आदि।
- भारत का इस समय बाह्य देशों के साथ कोई विशेष संबंध नहीं था। राज्यों का आर्थिक आधार कमज़ोर था, जिसके फलस्वरूप सैन्य आधार भी कमज़ोर हो गया था।

राजनीतिक विभाजन की यह समस्या केवल राजपूत राज्यों तक ही सीमित नहीं थी, बल्कि इसका परिणाम देश के सामान्य जनजीवन पर भी पड़ा था। उत्तर भारत में राजनीतिक एकता का पूर्णतः अभाव था। इस समय देश में छोटे-छोटे राज्यों का अस्तित्व था, इस कारण से इस समय कोई भी एक राज्य या शासक इतना शक्तिशाली नहीं था जो इन्हें जीतकर एकछत्र राज्य स्थापित कर सके। आंतरिक कलह ने इन्हें कमज़ोर बना दिया था और विदेशी आक्रमण का प्रभावशाली ढंग से विरोध करना इनके लिये संभव नहीं था। इस स्थिति के लिये राजपूत शासक स्वयं भी ज़िम्मेदार थे, क्योंकि ये हमेशा आपस में संघर्षरत रहते थे। आंतरिक अशांति की इस परिस्थिति ने अंततः राजपूत शासकों का अस्तित्व समाप्त कर दिया।

महमूद गज़नवी का आक्रमण (Invasion of Mahmood Ghaznavi)

महमूद गज़नवी, गज़नी के शासक **सुबुक्तगीन** का पुत्र था। सन् 998 ई. में वह गज़नी का सुल्तान बना। महमूद गज़नवी प्रथम शासक था जिसने **सुल्तान** की उपाधि धारण की। वह एक दूरदर्शी एवं महत्त्वाकांक्षी शासक था। उसने भारतीय धन-संपदा की लूट एवं भारत में इस्लाम धर्म के प्रसार हेतु सन् 1000 से 1027 के बीच लगभग **17 बार** आक्रमण किये। उसके द्वारा भारत पर किये गए **प्रमुख आक्रमण** निम्नलिखित हैं:–

- महमूद गज़नवी ने पहला आक्रमण 1000 ई. में हिन्दुशाही राज्य के सीमावर्ती नगरों पर किया और उन क्षेत्रों के कुछ दुर्गों पर अधिकार करने के बाद वापस गज़नी चला गया।
- महमूद ने दूसरा आक्रमण 1001 ई. में **हिंदुशाही** शासक जयपाल पर किया और उसकी राजधानी **वैहिंद** अथवा **उदभांडपुर** पर अधिकार कर लिया। उसने जयपाल को बंदी भी बना लिया था, परंतु धन लेकर उसे छोड़ दिया।
- सन् 1005 ई. में महमूद ने **मुल्तान** पर आक्रमण किया और वहाँ के शासक **करामिता** संप्रदाय के **फतह दाउद** को पराजित किया, परंतु 1010 ई. के दूसरे मुल्तान आक्रमण में उस पर अधिकार कर लिया।
- सन् 1018 ई. में महमूद ने सर्वप्रथम गंगा घाटी के क्षेत्र पर आक्रमण किया। इस समय यहाँ **गुर्जर प्रतिहार** शासक **राज्यपाल** का शासन था और उसकी राजधानी **कन्नौज** थी। महमूद ने कन्नौज और मथुरा को लूटा तथा मार्ग में बुलंदशहर (बुरन) के राजा हरदत्त ने अधीनता स्वीकार कर ली।
- सन् 1019 - 20 में **उसने** चंदेल शासक को दंडित करने के लिये अभियान किया और **कालिंजर** (बुंदेलखंड) के शासक को पराजित किया था।
- सन् 1021-22 ई. में महमूद ने पुनः पंजाब पर आक्रमण किया। इस आक्रमण का मुख्य उद्देश्य पंजाब का प्रशासन अपने अधीन करने का निश्चय था।

15 दिल्ली सल्तनत (Delhi Sultanate)

सन् 1206 ई. में मोहम्मद गोरी की आकस्मिक मृत्यु के कारण उत्तराधिकारी के संबंध में कोई निश्चित निर्णय नहीं लिया जा सका। गोरी का कोई पुत्र नहीं था, बल्कि उसके कई दास थे, उन दासों में तीन की स्थिति लगभग एकसमान थी। अत: उन तीनों ने आपस में उसके साम्राज्य को बाँट लिया। इसके अंतर्गत यल्दौज को गज़नी का राज्यक्षेत्र, कुबाचा को सिंध और मुल्तान का क्षेत्र तथा कुतुबुद्दीन ऐबक को भारतीय राज्यक्षेत्रों पर अधिकार प्राप्त हुआ।

सन् 1206 ई. से 1290 ई. तक उत्तर भारत के कुछ भागों पर जिन तुर्क शासकों ने शासन किया, उन्हें गुलाम वंश, मामलुक वंश, इल्वारी वंश व प्रारंभिक तुर्क आदि नामों से जाना जाता है।

गुलाम वंश (Slave Dynasty)

तेरहवीं शताब्दी की शुरुआत में तुर्कों द्वारा भारत में स्थापित प्रथम साम्राज्य को **गुलाम वंश** का नाम दिया गया। गुलाम वंश की स्थापना कुतुबुद्दीन ऐबक ने की थी, जो मोहम्मद गोरी का एक प्रमुख गुलाम था तथा यह भी ध्यान देने योग्य है कि आरंभिक तुर्क साम्राज्य को सुदृढ़ करने वाले सुल्तान इल्तुतमिश, बलबन आदि किसी न किसी शासक के गुलाम ही थे।

कुतुबुद्दीन ऐबक (1206-1210 ई.)

- कुतुबुद्दीन ऐबक को भारत में तुर्की राज्य का संस्थापक माना जाता है। वह भारत में स्थापित तुर्क साम्राज्य का प्रथम शासक था।
- शासक बनने के बाद ऐबक ने सुल्तान की उपाधि ग्रहण नहीं की, न उसने अपने नाम का खुतबा पढ़वाया और न ही अपने नाम के सिक्के चलाए बल्कि वह केवल **'मलिक'** और **'सिपहसालार'** की पदवियों से ही खुश रहा।
- कुतुबुद्दीन ऐबक को सन् 1208 में दासता से मुक्ति मिली। उसने लाहौर से ही शासन का संचालन किया तथा लाहौर ही उसकी राजधानी थी।
- कुतुबुद्दीन ऐबक एक वीर एवं उदार हृदय वाला सुल्तान था, वह लाखों में दान दिया करता था। अपनी असीम उदारता के कारण उसे **'लाखबख़्श'** कहा गया।
- ऐबक ने **हसन निजामी** और **फ़क्र-ए-मुदब्बिर** जैसे विद्वानों को संरक्षण दिया तथा प्रसिद्ध सूफी संत **ख्वाजा कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी** के नाम पर दिल्ली में कुतुबमीनार की नींव रखी, जिसे इल्तुतमिश ने पूरा करवाया।
- उसने दिल्ली में ही **'कुव्वत-उल-इस्लाम'** मस्जिद का निर्माण करवाया जिसे भारत में इस्लामी पद्धति पर निर्मित प्रथम मस्जिद माना जाता है तथा अजमेर स्थित **'अढ़ाई दिन का झोंपड़ा'** नामक मस्जिद का भी निर्माण उसी ने करवाया।
- सन् 1210 ई. में चौगान (पोलो) खेलते समय घोड़े से गिर जाने के कारण ऐबक की अकस्मात् ही मृत्यु हो गई।
- कुतुबुद्दीन ऐबक की मृत्यु के बाद उसका अयोग्य एवं अनुभवहीन पुत्र आरामशाह शासक बना जिसके कारण अमीरों ने स्वतंत्रता की घोषणा कर दी। बंगाल, अलीमर्दान खाँ के अधीन स्वतंत्र हो गया। ऐसी परिस्थितियों में प्रमुख तुर्क, अमीर अली इस्माइल ने ऐबक के दामाद इल्तुतमिश को सुल्तान बनने के लिये आमंत्रित किया।
- इल्तुतमिश ने 1210 ई. में आरामशाह को पराजित किया और स्वयं सल्तनत का सुल्तान बना।

शम्सुद्दीन इल्तुतमिश (1210-1236 ई.)

इल्तुतमिश दिल्ली सल्तनत के आरंभिक इतिहास में सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। जिन विषम परिस्थितियों में उसने राज्य प्राप्त किया, उन्हें अपनी योग्यता, दूरदर्शिता और प्रतिभा के बल पर उसने समाप्त किया और अपने साम्राज्य को मज़बूत किया। इसीलिये उसे दिल्ली सल्तनत का वास्तविक संस्थापक कहा जाता है। इल्तुतमिश, इल्बरी जनजाति का तुर्क था। वह ग्वालियर और बुलंदशहर का सूबेदार था। 1206 में ऐबक ने उसे बदायूँ का सूबेदार बनाया। ऐबक की मृत्यु के बाद दिल्ली के कुलीन तुर्कों ने आरामशाह की अयोग्यता के कारण इल्तुतमिश को सुल्तान बनने के लिये आमंत्रित किया। इल्तुतमिश ने आरामशाह को पराजित कर तुर्क सत्ता अपने हाथ में ले ली।

इल्तुतमिश ने लाहौर की बजाय दिल्ली को मुख्यालय बनाया। इल्तुतमिश ने 26 वर्ष तक शासन किया, जिसे तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है–

1. 1210 से 1220 ई. तक विरोधियों का दमन।
2. 1221 से 1229 ई. तक मंगोल आक्रमण और अन्य खतरों का सामना।
3. 1229 से 1236 ई. तक सत्ता के सुदृढ़ीकरण के प्रयास।

इल्तुतमिश को शासक बनने के उपरांत सबसे पहली चुनौती ताजुद्दीन यल्दौज ने दी, जिसे ऐबक ने पराजित किया था, परंतु वह फिर दिल्ली पर अपना अधिकार चाहता था। इल्तुतमिश इस समय अपने साम्राज्य में विद्रोह करने वाले कुत्बी और मुइज्जी सामंतों को कमज़ोर करने में लगा था। उसने अपने विश्वसनीय चालीस दास अधिकारियों को सामंतों के रूप में नियुक्त कर नया दल चालीसा (चहलगामी) का गठन किया तथा कुत्बी और मुइज्जी सामंतों को इन बड़े पदों से हटा दिया। इस प्रकार राजसत्ता पर इल्तुतमिश ने पूर्ण नियंत्रण प्राप्त कर अपनी आंतरिक स्थिति को मज़बूत किया।

1215-16 में इल्तुतमिश का यल्दौज से युद्ध हुआ, क्योंकि वह ख्वारिज़्म के शासक से पराजित होकर पंजाब पर अधिकार कर उसे

16 क्षेत्रीय शक्तियाँ : 13वीं–15वीं सदी
(Regional Powers : 13rd-15th Century)

मध्य एशियाई आक्रमणकारी तैमूर लंग ने 1398 ई. में दिल्ली सल्तनत पर आक्रमण किया। उसके आक्रमण ने जहाँ एक ओर तुगलक राजवंश का पतन कर दिया, वहीं दूसरी ओर दिल्ली सल्तनत के विघटन की प्रक्रिया तीव्र कर दी। तुगलक साम्राज्य के विघटन के पश्चात् केंद्रीय सत्ता लुप्त हो गई और इस विघटित साम्राज्य के अवशेषों पर ही कई क्षेत्रीय शक्तियों का उद्भव हुआ। इन क्षेत्रीय शक्तियों में उत्तरी भारत में **मालवा, जौनपुर, मेवाड़, कश्मीर, गुजरात, बंगाल, उड़ीसा व असम** प्रमुख थे जबकि दक्षिण भारत में **विजयनगर और बहमनी** प्रमुख राज्य थे।

नोट: विजयनगर एवं बहमनी साम्राज्य के बारे में विस्तृत जानकारी अध्याय 17 में दी गई है।

इन क्षेत्रीय शक्तियों की स्वतंत्रता तब तक ही (लगभग 200 वर्ष) बनी रही जब तक कि मध्यकालीन भारतीय इतिहास में मुगलों का आगमन नहीं हुआ था। इस समय क्षेत्रीय शक्तियों की सबसे बड़ी खामी थी कि ये आपस में निरंतर एक-दूसरे के साथ संघर्षरत थे, जैसे– विजयनगर और बहमनी साम्राज्य, मालवा एवं जौनपुर तथा बंगाल का राज्य आदि। यही कारण रहा कि इन राज्यों द्वारा कभी भी विस्तृत साम्राज्य की स्थापना नहीं की जा सकी।

प्रमुख क्षेत्रीय शक्तियाँ (Major Regional Powers)

मालवा *(Malwa)*

मालवा का राज्य नर्मदा तथा ताप्ती नदियों के मध्य अवस्थित था। इस प्रांत को सन् 1305 में अलाउद्दीन खिलजी ने दिल्ली सल्तनत में शामिल किया था, परंतु तुगलक वंश के पतन के दौरान तुगलक गवर्नर **दिलावर खाँ** ने सन् 1401 ई. में स्वतंत्र **मालवा** साम्राज्य की स्थापना की।

मालवा आर्थिक और सांस्कृतिक दोनों दृष्टि से समृद्ध राज्य था। पठारी क्षेत्र होने के कारण इसका सामरिक महत्त्व भी था। यहाँ के सुल्तानों ने राजधानी **मांडू** में अनेक भव्य एवं सुंदर महलों, मस्जिदों एवं मकबरों का निर्माण करवाया था। गुजरात एवं जौनपुर मालवा के प्रमुख प्रतिद्वंद्वी राज्य थे जिनमें आपस में हमेशा प्रतिस्पर्द्धा होती थी।

- **दिलावर खाँ** का वास्तविक नाम हुसैन था। उसने अपनी पुत्री का विवाह खानदेश के शासक फारुकी के बेटे अली शेर खिलजी के साथ किया तथा गुजरात के शासक **मुजफ्फर शाह** के साथ मित्रतापूर्ण संबंध बनाए रखते हुए मालवा को आक्रमण से बचाया।
- मालवा का प्रसिद्ध शासक **हुशंगशाह** (1405-35) था। उसने धार के स्थान पर **मांडू** को साम्राज्य की राजधानी बनाया।
- हुशंगशाह एक अत्यंत लोकप्रिय शासक था, उसने बहुसंख्यक हिन्दुओं के प्रति सहिष्णुता की नीति अपनाई तथा अनेक हिन्दुओं को मालवा में बसने के लिये प्रेरित किया।
- हुशंगशाह महान विद्वान और सूफी संत शेख बुरहानुद्दीन का शिष्य था। उसके संरक्षण में अनेक सूफी संत मालवा की ओर आकर्षित हुए। हुशंगशाह ने 1406 ई. में अपनी मृत्यु से पूर्व नर्मदा के किनारे **होशंगाबाद** नगर की स्थापना की।
- सन् 1436 ई. में इसके वंश को समाप्त कर महमूद खिलजी ने मालवा में एक नए खिलजी वंश की स्थापना की। उसने **गुजरात, मेवाड़** और **बहमनी** राज्यों के साथ संघर्ष किया और मालवा को एक शक्तिशाली साम्राज्य बनाया।
- मेवाड़ के साथ राणा कुंभा से हुए युद्धों में दोनों शासकों ने विजय का दावा किया है। राणा कुंभा ने चित्तौड़ में **विजय स्तंभ** बनवाया और महमूद खिलजी ने मांडू में **"सात मंज़िलों वाला स्तंभ"** स्थापित किया।
- महमूद खिलजी ने जैन व्यापारियों को भी संरक्षण दिया तथा मांडू में एक **चिकित्सालय** की स्थापना की जहाँ रोगियों का नि:शुल्क इलाज किया जाता था।
- सन् 1531 ई. में गुजरात के शासक **बहादुरशाह** ने महमूद द्वितीय को पराजित कर मालवा को अपने राज्य में मिला लिया।
- अंतत: बादशाह अकबर ने 1562 ई. में अब्दुल्ला खाँ के नेतृत्व में मालवा पर विजय हेतु मुगल सेना भेजी। उस समय वहाँ का शासक बाज़बहादुर था, जिसे परास्त कर मालवा को अंतिम रूप से मुगल साम्राज्य का हिस्सा बना लिया गया।

मेवाड़ *(Mewar)*

मेवाड़ राज्य, गुहिलौत राजवंश के अधीन एक प्राचीन राज्य था जिसकी राजधानी उदयपुर के निकट नागदा थी। बाद में इसकी राजधानी **चित्तौड़** हो गई, परंतु सन् 1303 ई. में सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी ने मेवाड़ पर अधिकार कर लिया और यह भी सल्तनत का एक प्रांत बन गया एवं इसका नाम **खिज्राबाद** कर दिया गया।

- हम्मीरदेव ने सन् 1314 ई. में मेवाड़ में सिसोदिया वंश की स्थापना की और मुहम्मद बिन तुगलक के समय चित्तौड़ को जीतकर पुन: मेवाड़ की राजधानी बना दिया।
- मोकल का पुत्र **राणा कुंभा** सन् 1433 ई. में मेवाड़ का शासक बना। वह मेवाड़ का योग्य एवं सर्वाधिक शक्तिशाली शासक था। उसने मेवाड़ को एक महत्त्वपूर्ण शक्ति के रूप में स्थापित कर दिया।
- राणा कुंभा को एक महान विजेता माना जाता है। उसने राजस्थान के बूंदी, कोटा, डूँगरपुर, सारंगपुर, नागौर आदि छोटे-छोटे राज्यों को मेवाड़ की अधीनता स्वीकार करने के लिये बाध्य किया।
- मालवा विजय की स्मृति में **राणा कुंभा** ने चित्तौड़ में **कीर्तिस्तंभ (विजय स्तंभ)** की स्थापना करवाई। वह स्वयं एक बड़ा विद्वान था। वह विभिन्न विद्याओं, जैसे– गणित, तर्कशास्त्र, धर्मशास्त्र, साहित्य तथा संगीत में प्रवीण था।

17

विजयनगर एवं बहमनी साम्राज्य
(Vijayanagar and Bahmani Empire)

14वीं शताब्दी के प्रथम चरण या मुहम्मद बिन तुगलक के शासनकाल में लगभग संपूर्ण दक्षिण भारत दिल्ली सल्तनत में शामिल किया जा चुका था। उसने दक्षिणी प्रांतों में मज़बूत सत्ता स्थापित करने के लिये कुछ प्रयास भी किये, जैसे– विजित प्रदेशों को प्रांतों में विभाजित किया, दौलताबाद में नई राजधानी बनाई परंतु सारे प्रयास असफल हो गए और दक्षिण के क्षेत्रों ने विद्रोह कर दिया। इसी विद्रोह के क्रम में दक्षिण भारत में दो नवीन साम्राज्यों का उदय हुआ। विजयनगर एवं बहमनी साम्राज्य। यद्यपि इन दोनों राज्यों के शासकों द्वारा स्थायित्व तथा प्रजा के कल्याण के लिये अनेक सामाजिक एवं सांस्कृतिक उपाय किये गए परंतु दोनों के बीच तब तक आपसी संघर्ष चलता रहा, जब तक कि बहमनी राज्य का विघटन नहीं हो गया। इस प्रकार दक्षिण भारतीय इतिहास में विजयनगर एवं बहमनी साम्राज्य का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

विजयनगर: राजनीतिक एवं प्रशासनिक स्थिति
(Vijayanagar : Political and Administrative Status)

विजयनगर राज्य की स्थापना हरिहर और बुक्का नाम के दो भाइयों के द्वारा 1336 ई. में की गई थी। कहा जाता है कि **हरिहर** और **बुक्का** वारंगल के काकतीय शासक प्रताप रुद्रदेव के पारिवारिक संबंधी या सामंत थे। तुगलकों ने वारंगल पर आक्रमण कर राज्य को नष्ट कर दिया तब दोनों भाई (हरिहर और बुक्का) **कांपिली** अथवा **अनेगोंडी** (वर्तमान कर्नाटक) राज्य में जाकर रहने लगे। एक विद्रोही को शरण देने के कारण कांपिली पर मुहम्मद तुगलक ने आक्रमण कर दिया तथा विजयोपरांत हरिहर और बुक्का को बंदी बना लिया गया। इन दोनों को इस्लाम धर्म स्वीकार करने के लिये विवश किया गया उसके उपरांत इन्हें विद्रोहियों के दमन के लिये दक्षिण भारत भेजा गया, परंतु दोनों भाइयों ने दक्षिण भारत में प्रारंभ हुई तुर्क सत्ता के विरोधी गतिविधियों में योगदान दिया तथा इस्लाम धर्म को त्यागकर शृंगेरी के प्रतिष्ठित गुरु **विद्यारण्य** की प्रेरणा से पुन: हिन्दू धर्म स्वीकार कर तुंगभद्रा नदी के किनारे सामरिक रूप से महत्त्वपूर्ण स्थान को विजयनगर के नाम से बसाया और शासन करने लगे। 1336 ई. में हरिहर विजयनगर का शासक बना। हरिहर और बुक्का द्वारा स्थापित वंश को उनके पिता संगम के नाम पर **संगम वंश** कहा गया।

प्रमुख राजवंश *(Major Dynasty)*

राजवंश	संस्थापक	शासनकाल
संगम वंश	हरिहर एवं बुक्का	1336–1485 ई.
सालुव वंश	नरसिंह सालुव	1485–1505 ई.
तुलुव वंश	वीर नरसिंह	1505–1570 ई.
अरावीडु वंश	तिरुमल्ल	1570–1652 ई.

संगम वंश (1336-1485 ई.)
(Sangama Dynasty 1336-1485 AD)

हरिहर प्रथम (1336-1356 ई.)

विजयनगर साम्राज्य के संस्थापकों में से एक, हरिहर प्रथम सन् 1336 ई. में शासक बना। उसने प्रारंभ में अनेगोण्डी को अपनी राजधानी बनाया परंतु बाद में साम्राज्य की राजधानी विजयनगर स्थानांतरित कर दी। उसने सन् 1346 ई. में होयसल साम्राज्य को जीत कर उसे विजयनगर में शामिल कर लिया। सन् 1352–53 में मदुरै पर भी विजय प्राप्त कर ली।

बुक्का प्रथम (1356-1377 ई.)

हरिहर प्रथम की मृत्यु के बाद उसका भाई बुक्का प्रथम विजयनगर का शासक बना। यद्यपि वह हरिहर प्रथम के साथ 1336 से ही **संयुक्त शासक** रूप से शासन कर रहा था।

- उसने सन् 1377 ई. में मदुरै के अस्तित्व को समाप्त कर विजयनगर साम्राज्य का विस्तार कर अपनी चरम सीमा तक पहुँचा दिया अब इसमें तमिल व चेर के प्रदेश भी सम्मिलित थे।
- इसके समय ही विजयनगर एवं बहमनी के मध्य संघर्ष की शुरुआत हुई। उसने बहमनी सुल्तान मुहम्मदशाह प्रथम से युद्ध किया और समझौता किया।

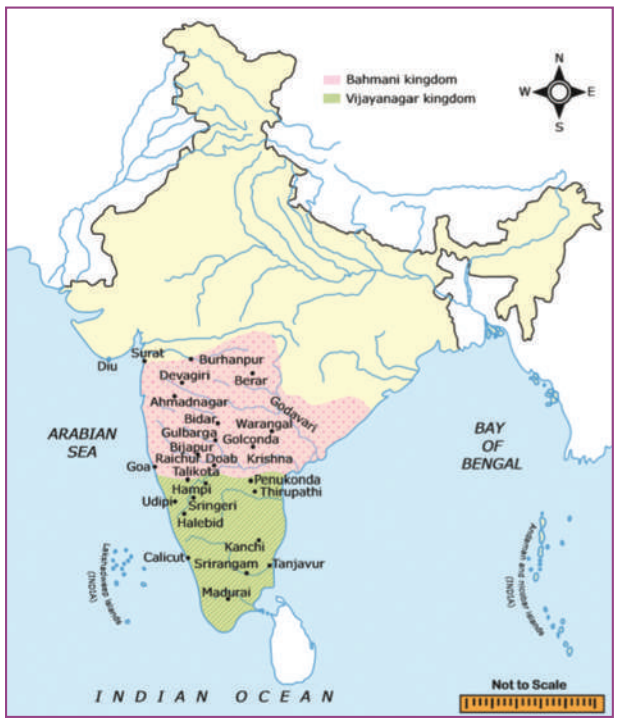

18 भक्ति एवं सूफी आंदोलन (Bhakti and Sufi Movement)

मध्यकालीन भारत के प्रारंभ में संतों तथा सूफियों के प्रयासों से हिन्दू एवं इस्लाम धर्म में नवीन शक्ति एवं गतिशीलता का संचार हुआ, इसे भक्ति एवं सूफी आंदोलन के नाम से जाना जाता है। भक्ति आंदोलन का प्रारंभ उपनिषदों, भगवद्गीता, पुराण आदि धार्मिक ग्रंथों के आधार पर हुआ, जबकि सूफी आंदोलन इस्लाम की कट्टरता के विरुद्ध तथा तुर्की शासन में व्याप्त घुटन एवं उदासी को दूर करने के लिये हुआ।

भक्ति एवं सूफी आंदोलन का मुख्य उद्देश्य समाज में व्याप्त बुराइयों को दूर करना तथा प्रेम और उदारता का संदेश देना था। इन आंदोलनों की सबसे बड़ी विशेषता यह रही कि इन्हें न तो राजकीय संरक्षण मिला और न ही राजनीतिक उतार-चढ़ाव से इनमें कोई विचलन आया।

भक्ति आंदोलन (Bhakti Movement)

भक्ति आंदोलन का विकास मुख्यत: दो चरणों में हुआ। पहले चरण की शुरुआत दक्षिण भारत में 8वीं शताब्दी से हुई जो 13वीं शताब्दी तक चला, जबकि दूसरे चरण की शुरुआत 13वीं शताब्दी में हुई और यह 16वीं शताब्दी तक चला। इस चरण का प्रमुख क्षेत्र उत्तरी भारत रहा।

भक्ति आंदोलन के संतों द्वारा हिन्दू धर्म में व्याप्त विसंगतियों के सुधार हेतु काफी प्रयास किये गए। दक्षिण भारत में भक्ति आंदोलन को शुरू करने का श्रेय नयनार और अलवार संतों को प्राप्त है। नयनार, शैव धर्म के अनुयायी थे वहीं अलवार, वैष्णव धर्म के अनुयायी थे। इन नयनार तथा अलवार संतों द्वारा बौद्ध और जैन धर्म का विरोध किया गया तथा भक्ति को ईश्वर प्राप्ति का एकमात्र मार्ग बताया गया। उन्होंने कर्मकांडों और अंधविश्वासों की निंदा की तथा अपने उपदेश जन-समुदाय को स्थानीय भाषा में दिये। उनका यह एक समतावादी आंदोलन था, जिसमें जाति-धर्म तथा ऊँच-नीच का प्रबल विरोध किया गया था। **प्रथम चरण के भक्ति आंदोलन के प्रमुख संत निम्नलिखित थे–**

शंकराचार्य

- शंकराचार्य को भक्ति आंदोलन का प्रथम संत माना जाता है। उनका जन्म **केरल के कलाडी** में 788 ई. में हुआ था।
- इनके दर्शन का आधार वेदांत अथवा उपनिषद् था। उन्होंने भारत में बह्म एवं ज्ञानवाद का प्रसार किया, इसलिये उनके सिद्धांत एवं दर्शन को **अद्वैतवाद** के नाम से जाना जाता है।
- शंकराचार्य ने भारत में धर्म की एकता के लिये तथा पूरे भारत को एक सूत्र में पिरोने के लिये भारत की चारों दिशाओं में चार मठ स्थापित किये। सन् 820 ई. में हिमालय की तलहटी में स्थित **केदारनाथ** में मात्र 32 वर्ष की आयु में उनकी मृत्यु हो गई।

शंकराचार्य द्वारा स्थापित मठ		
दिशा	**स्थान**	**मठ**
उत्तर	बद्रीनाथ	ज्योतिर्मठ
दक्षिण	शृंगेरी	वेदांत मठ
पूर्व	पुरी	गोवर्धन मठ
पश्चिम	द्वारका	शारदा मठ

रामानुज

- रामानुज 12वीं शताब्दी के प्रमुख संत थे, जिनका जन्म **तमिलनाडु के श्री पेरंबुदर** में हुआ था। वे सगुण धारा के **वैष्णव** संत थे।
- उन्होंने शंकराचार्य के ज्ञानवादी अद्वैत दर्शन के विरोध में **विशिष्टाद्वैतवाद** का दर्शन दिया तथा ज्ञान के स्थान पर भक्ति को महत्ता प्रदान की।
- उन्होंने मनुष्य की समानता पर बल दिया और जाति व्यवस्था की भर्त्सना की और अपने क्रियाकलापों के लिये **काँची** और **श्रीरंगपट्टनम** में मुख्य केंद्र स्थापित किये।

प्रमुख प्रवर्तक एवं उनके संप्रदाय	
प्रवर्तक	**संप्रदाय**
शंकराचार्य	स्मृति संप्रदाय
रामानुजाचार्य	श्री संप्रदाय
मध्वाचार्य	ब्रह्म संप्रदाय
वल्लभाचार्य	रुद्र संप्रदाय
गुरु नानक	सिक्ख संप्रदाय
दादू दयाल	दादू पंथ एवं निपख संप्रदाय
हित हरवंश	राधाबल्लभ संप्रदाय
रामानंद	रामवत संप्रदाय
श्रीचंद (गुरु नानक के पुत्र)	उदासी संप्रदाय
निरंजन	निरंजनी संप्रदाय
संत लाल दास	लाल पंथ
नामदेव	बारकरी संप्रदाय
रामदास बोध	घारकरी संप्रदाय
शंकर देव	एकशरण संप्रदाय
निंबार्क	सनक संप्रदाय
स्वामी हरिदास	सुखी संप्रदाय

19

मुगल साम्राज्य
(Mughal Empire)

मध्यकालीन भारतीय इतिहास में मुगलों का आगमन एक नवीन युग का परिचायक था। यद्यपि भारत में मुगल वंश का संस्थापक **बाबर** विदेशी था और मंगोल तथा चंगेज खाँ जैसे आक्रमणकारियों का वंशज था, परंतु उसके और उसके वंशज द्वारा एक स्थिर एवं शांतिपूर्ण सत्ता स्थापित की गई तथा उसने लाखों लोगों पर उनकी मर्जी से शासन किया।

सन् 1404 ई. में तैमूरलंग की मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकारी शाहरुख मिर्ज़ा के काल में मंगोल साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। इस राजनीतिक शून्यता को भरने के लिये कई नए राज्यों की स्थापना **ट्रांस-ऑक्सियाना** के क्षेत्रों में हुई, जैसे- **उज्बेक राज्य, सफवी राज्य** और **मुगल राज्य**। मुगल राज्य की स्थापना उमर शेख मिर्ज़ा के नेतृत्व में हुई, जो फरगना नामक छोटे राज्य के शासक थे। सन् 1494 ई. में एक दुर्घटना में उमर शेख की मृत्यु हो गई। उसके बाद उसका पुत्र बाबर मात्र 11 वर्ष की आयु में ही फरगना का शासक बना। बाबर बड़ा महत्त्वाकांक्षी शासक था। वह फरगना में अपनी स्थिति सुदृढ़ करने के बाद तैमूर की राजधानी समरकंद को भी जीतना चाहता था और 1496 ई. में समरकंद पर अधिकार भी कर लिया, परंतु इस क्रम में उससे फरगना भी हाथ से निकल गया।

उज्बेक सरदार तथा सफवी वंश के द्वारा बार-बार पराजय ने बाबर को अपने पैतृक सिंहासन को प्राप्त करने के विचार को त्याग कर भारत में अपना भाग्य आजमाने के लिये विवश कर दिया। इसी क्रम में बाबर ने सन् 1504 ई. में काबुल पर अधिकार कर लिया तथा 1507 ई. में पहली बार मिर्ज़ा की जगह **पादशाह** की उपाधि धारण की। बाबर ने जिस समय भारत पर आक्रमण किया, उस समय भारत में बंगाल, मालवा, गुजरात, सिंध, कश्मीर, मेवाड़, खानदेश, विजयनगर, बहमनी की रियासतें एवं दिल्ली स्वतंत्र राज्य थे।

मुगल बादशाह (Mughal Emperor)

बाबर के आक्रमण के समय दिल्ली में लोदी वंश के शासक इब्राहिम लोदी का शासन था। बाबर को भारत आने का निमंत्रण पंजाब के सूबेदार दौलत खाँ लोदी तथा इब्राहिम के चाचा आलम खाँ लोदी ने दिया था। इस निमंत्रण से ही उसे दिल्ली सल्तनत के आंतरिक मतभेद का पता चल चुका था और कहा जाता है कि इसी समय मेवाड़ का शासक **राणा सांगा** के राजदूत ने बाबर को भारत में आक्रमण करने के लिये आमंत्रित किया था।

बाबर (1526-1530 ई.)

- भारत में मुगल वंश की स्थापना बाबर ने सन् 1526 ई. के पानीपत के युद्ध की विजय के बाद की थी, परंतु इस विजय से पूर्व वह भारत में चार बार आक्रमण कर चुका था।
- बाबर ने भारत के विरुद्ध प्रथम अभियान 1519 ई. में **यूसुफजाई जाति** के विरुद्ध किया और इस अभियान में बाजौर और भेरा के किले को अपने अधिकार में कर लिया। इस किले को जीतने में ही उसने सर्वप्रथम बारूद और तोपखाने का प्रयोग किया।
- पानीपत के विजय के उपरांत बाबर ने काबुल के प्रत्येक निवासी को एक-एक चाँदी का सिक्का दान में दिया था, जिसके कारण बाबर को कलंदर कहा जाता है।
- **खानवा का युद्धः** मार्च, 1527 ई. को यह युद्ध बाबर और राजपूत सरदार राणा सांगा के मध्य आगरा के खानवा नामक स्थान पर हुआ, जिसमें बाबर ने अपने कुशल नेतृत्व के कारण जीत हासिल की।
- इस युद्ध में बाबर ने जिहाद का नारा दिया तथा मुसलमानों को व्यापारिक कर (तमगा) से मुक्ति दे दी। युद्ध जीतने के बाद उसने गाजी की उपाधि धारण की।
- **चंदेरी का युद्धः** जनवरी, 1528 ई. को बाबर और मेदनीराय के मध्य चंदेरी में युद्ध हुआ, जिसमें मेदनीराय पराजित हुआ तथा बाबर ने चंदेरी एवं मालवा पर अधिकार कर लिया।
- **घाघरा का युद्धः** मई, 1529 में बंगाल एवं बिहार की संयुक्त अफगान सेना और बाबर के मध्य घाघरा का युद्ध हुआ इसमें भी बाबर की विजय हुई।
- घाघरा की विजय के बाद बाबर का भारत में स्थायी रूप से अधिकार हो गया तथा उसका साम्राज्य सिंधु से लेकर बिहार तक तथा उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में ग्वालियर तक फैल गया।
- 26 दिसंबर, 1530 ई. में 48 वर्ष की आयु में बाबर की मृत्यु हो गई और उसे आगरा के नूर अफगान बाग में दफना दिया गया, परंतु बाद में काबुल में उसी के द्वारा चुने गए स्थान पर उसे फिर से दफनाया गया।
- बाबर ने अपनी आत्मकथा लिखी, जो **बाबरनामा** या **तुजुके-बाबरी** के नाम से जानी जाती है। यह चगताई तुर्की भाषा में लिखा गया महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है, जिसमें भारत की तत्कालीन राजनीतिक दशा, भारतीय समाज एवं **प्रकृति** का वर्णन है।
- बाबर ने सड़कों को नापने के लिये **गज-ए-बाबरी** नामक माप का प्रयोग किया तथा तुर्की भाषा में एक काव्य संग्रह **दीवान** की रचना की।

हुमायूँ (1530-1540 ई., 1555-1556 ई.)

- बाबर की मृत्यु के बाद उसके चार पुत्रों में ज्येष्ठ पुत्र हुमायूँ बादशाह बना। बाबर मृत्यु पूर्व उसे अपना उत्तराधिकारी घोषित कर चुका था, इसलिये उसे किसी विरोध का सामना नहीं करना पड़ा।

20

मराठा साम्राज्य
(Maratha Empire)

मुगल साम्राज्य के पतन के दौरान ही मराठा शक्ति का उदय हुआ। मराठों के उदय में सर्वप्रथम योगदान क्षेत्र-विशेष की भौगोलिक परिस्थितियों का था। मराठों का मूल निवास-क्षेत्र मराठावाड़ा तीन भागों में विभक्त था। पहला सह्याद्रि पर्वत से दक्षिण तटवर्त्ती भाग दूसरा सह्याद्रि का पर्वतीय क्षेत्र और तीसरा पूर्वी मैदान का पहाड़ी एवं जंगली क्षेत्र। सह्याद्रि के तटवर्ती क्षेत्र को कोंकण एवं पर्वतीय क्षेत्र को मालावार के नाम से जाना जाता है। यहाँ कृषि कार्य कठिन था। प्राकृतिक परिस्थितियों के कारण मराठों में साहस, कठोर परिश्रम, आत्मसंयम जैसे गुणों का विकास हुआ। अपनी आजीविका को चलाने के लिये मराठे लूट-पाट का सहारा लेते थे। मराठों में एकता की भावना जगाने में मराठी भाषा का सर्वाधिक योगदान रहा।

भक्ति आंदोलन के संतों जैसे ज्ञानेश्वर, एकनाथ, तुकाराम और रामदास की शिक्षाओं ने मराठा राज्य के उदय में सहयोग दिया। ये संत जाति प्रथा का विरोध करते थे और स्थानीय मराठी भाषा में उपदेश देते थे। शिवाजी के गुरु रामदास ने महाराष्ट्र धर्म को प्रचारित किया।

मोडी लिपि

मोडी उस लिपि का नाम है, जिसका प्रयोग सन् 1950 तक महाराष्ट्र की प्रमुख भाषा मराठी को लिखने के लिये किया जाता था। मोडी शब्द की उत्पत्ति फारसी के शब्द शिकस्त के अनुवाद से हुई है, जिसका अर्थ होता है 'तोड़ना या मोड़ना' इसे हेमादपंत (या हेमाद्री पंडित) ने महादेव यादव और रामदेव यादव के शासनकाल के दौरान (1260-1309 ई.) विकसित किया था।

दक्षिण की राजनीतिक स्थितियों ने भी मराठों के उत्थान में सहयोग दिया। बहमनी राज्य के विखंडन तक मराठे अनुभवी लड़ाकू जाति के रूप में ख्याति प्राप्त कर चुके थे। सर्वप्रथम मुगलों के विरुद्ध संघर्ष में अहमदनगर के प्रधानमंत्री मलिक अंबर ने मराठों का सहयोग प्राप्त किया तथा मराठों को अपनी सेना में शामिल किया। सर्वप्रथम शिवाजी के पिता शाहजी भोंसले अहमदनगर की सेना में शामिल हुए फिर वह बीजापुर के सूबेदार हो गए। 1620 ई. में शाहजी जहाँगीर की सेवा में चले गए। इस प्रकार जहाँगीर के काल में मराठे पहली बार मुगलों की सेवा में आए। मुगल बादशाह शाहजहाँ ने शाहजी को 5000 का मनसब प्रदान किया, परंतु शीघ्र ही शाहजी ने मुगलों का साथ छोड़ दिया और पुनः अहमदनगर आ गए। जनवरी 1664 ई. में शाहजी की मृत्यु हो गई।

मराठा साम्राज्य के उदय के कारण (Cause of Rise of Maratha Empire)

मध्यकालीन भारतीय इतिहास में मराठा साम्राज्य का उदय कोई एक घटना नहीं, बल्कि यह विभिन्न कारकों का सम्मिलित प्रभाव था। उन कारकों में जहाँ मराठा क्षेत्र की भौगोलिक स्थिति, यहाँ के भक्ति आंदोलन तथा औरंगजेब की नीतियों का योगदान रहा, वहीं शिवाजी के चमत्कारिक व्यक्तित्व ने भी उनके उदय में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। मराठा साम्राज्य के उदय के कारणों को निम्नलिखित रूपों में देखा जा सकता है-

भौगोलिक क्षेत्र (Geographical Region)

एम.जी. रानाडे ने अपनी पुस्तक **'द राइज़ ऑफ मराठा पॉवर'** (The rise of Maratha power) में मराठवाड़ा के ऊबड़-खाबड़ भौगोलिक क्षेत्र को उनके उदय का प्रधान कारण माना है।

भक्ति आंदोलन का प्रभाव (Effect of Bhakti Movement)

14वीं शताब्दी के भक्ति आंदोलन की मराठों के उदय में महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। मराठा संतों ने एक ही भाषा में अपने उपदेश देकर तथा उच्च और निम्न वर्ग को एक-साथ जोड़कर राष्ट्र की भावना भर दी। शिवाजी के गुरु, समर्थ गुरु रामदास ने **दासबोध** नामक एक पुस्तक लिखी, जिसका प्रभाव शिवाजी पर पड़ा।

औरंगजेब की नीति (Polices of Aurangzeb)

औरंगजेब की धार्मिक नीति भी मराठों के उदय का एक प्रमुख कारण बनी। उसकी नीतियों से हिन्दुओं में निराशा व्याप्त थी और इस निराशा ने एक अलग राज्य के उदय में सहायता प्रदान की।

शिवाजी (Shivaji)

छत्रपति शिवाजी महाराज या शिवाजी राजे भोंसले भारत के महान योद्धा एवं रणनीतिकार थे। 1627 ई. को शिवाजी का जन्म **शिवनेर** के किले में हुआ था। इनकी माता का नाम **जीजाबाई** और पिता **शाहजी भोंसले** थे। शिवाजी भोंसले वंश के थे। **दादाजी कोंडदेव शिवाजी** के संरक्षक थे। शिवाजी के ऊपर समर्थ गुरु रामदास का अत्यधिक प्रभाव था। शिवाजी का विवाह 1640 ई. में **'साईबाई'** के साथ हुआ था। शिवाजी ने अपना प्रथम सैन्य अभियान बीजापुर के आदिलशाही राज्य के विरुद्ध किया। सर्वप्रथम 1643 ई. में शिवाजी ने **सिंहगढ़** का किला जीता और 1647 ई. में शिवाजी ने **कोंडाना** पर विजय प्राप्त की। इस विजय के उपरांत बीजापुर के सुल्तान द्वारा शाहजी बंदी बना लिये गए थे। 1648 ई. में शिवाजी ने अपने पिता को रिहा कराने के लिये कोंडाना का किला छोड़ दिया था।

शिवाजी का चमत्कारिक व्यक्तित्व *(Shivaji's Charismatic Personality)*

मराठा शक्ति को संगठित करके मराठा साम्राज्य के उदय में सर्वाधिक योगदान शिवाजी ने दिया। शिवाजी ने सर्वप्रथम मराठावाद की भावना को

खंड

C

आधुनिक भारत

(मध्य प्रदेश के विशेष संदर्भ सहित)

21 यूरोपीय कंपनियों का भारत आगमन
(Arrival of European Companies in India)

प्राचीन काल में यूनानियों के भारत आगमन के साथ ही भारत और यूरोप के मध्य व्यापारिक संबंध स्थापित हुए। पूर्व मध्यकाल में एशिया और यूरोप के बीच व्यापार अरब देशों के व्यापारियों की मध्यस्थता से होता था। यह व्यापार स्थल मार्ग से होता था, परंतु **1453 ई.** में **तुर्की साम्राज्य** का **कुस्तुनतुनिया** पर अधिकार हो जाने के उपरांत स्थलमार्ग से व्यापार अवरुद्ध हो गया। परिणामत: वैकल्पिक मार्ग के रूप में यूरोप के व्यापारी सुरक्षित समुद्री मार्ग की तलाश करने लगे। इसी क्रम में पुर्तगाल निवासी **वास्कोडिगामा** ने **केप ऑफ गुड होप** की यात्रा करते हुए भारत के नए समुद्री मार्ग की खोज की और जल्द ही भारत का समुद्री व्यापार जो अरब व्यापारियों के हाथों में था, उसे शक्ति के बल पर पुर्तगालियों ने अपने हाथ में ले लिया। 15**वीं शताब्दी** के उत्तरार्द्ध एवं **17वीं शताब्दी** के पूर्वार्द्ध के दौरान भारत में व्यापार के प्रारंभिक उद्देश्यों से प्रवेश करने वाली यूरोपीय कंपनियों ने यहाँ की राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक स्थिति को लगभग **350** वर्षों तक प्रभावित किया। इन विदेशी शक्तियों में **पुर्तगाली** प्रथम थे। इसके पश्चात् क्रमश: **डच, अंग्रेज़, डेनिश** तथा **फ्राँसीसी** आए।

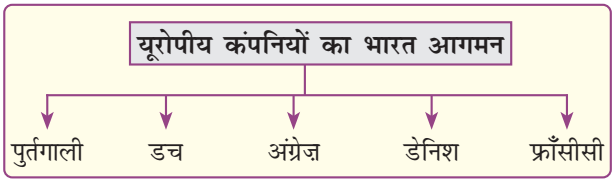

भारत में पुर्तगालियों का आगमन (Arrival of Portuguese in India)

सर्वप्रथम पुर्तगाली व्यापारी **वास्कोडिगामा ने** 17 मई, 1498 को भारत के पश्चिमी तट पर अवस्थित बंदरगाह **कालीकट** पहुँचकर भारत के लिये नए समुद्री मार्ग की खोज की। वास्कोडिगामा का स्वागत कालीकट के तत्कालीन शासक **जमोरिन** (यह कालीकट के शासक की उपाधि थी) द्वारा किया गया। लेकिन तत्कालीन भारतीय व्यापार पर अधिकार रखने वाले अरब व्यापारियों ने पुर्तगालियों का विरोध किया। भारत में द्वितीय पुर्तगाली अभियान **पेड्रो अल्वारेज कैब्राल** के नेतृत्व में 1500 ई. में आया। प्रथम पुर्तगाली फैक्ट्री की स्थापना 1503 ई. में कोचीन में की गई और द्वितीय फैक्ट्री की स्थापना 1505 ई. में **कन्नूर** में की गई। इस प्रकार 15-16वीं सदी में पुर्तगालियों ने कालीकट, गोवा, दमन, दीव एवं हुगली के बंदरगाहों पर भी अपनी व्यापारिक कोठियाँ स्थापित कर लीं।

आरंभिक वर्षों में पुर्तगालियों का व्यापार पर एकाधिकार रहा। उन्होंने व्यापार के साथ शक्ति का भी प्रयोग किया, साथ ही एक **कॉर्ट्ज-आर्मेडा काफिला पद्धति** (Cortes-Armada Caravan System) के माध्यम से समुद्री व्यापार पर नियंत्रण कायम किया। फलस्वरूप समकालीन मुगल जहाज़रानी के लिये खतरा पैदा करके मुगल बादशाहों से व्यापार संबंधी छूट प्राप्त की।

पुर्तगाली समुद्री डकैती और लूटपाट में भी पीछे नहीं रहे। अमानवीय अत्याचार करने और अव्यवस्था फैलाने में भी उनका हाथ रहा। उन्होंने कट्टरता के द्वारा भारतीय समाज का ईसाईकरण करने का भी प्रयास किया। फलत: पुर्तगालियों को विरोध का भी सामना करना पड़ा। भारत में **तंबाकू की खेती, जहाज़ निर्माण तथा प्रिंटिंग प्रेस** की शुरुआत पुर्तगालियों के आगमन के पश्चात् हुई। पुर्तगालियों ने ही 1556 ई. में गोवा में **प्रथम प्रिंटिंग प्रेस** की स्थापना की। भारत में **फलों** की कई प्रजातियों को लाने का श्रेय भी पुर्तगालियों को जाता है। पुर्तगालियों की दोषपूर्ण नीति के कारण 18वीं सदी की शुरुआत तक भारतीय व्यापार के क्षेत्र से पुर्तगालियों का प्रभाव कम हो गया तथा वे भारतीय व्यापार से बाहर हो गए। हालाँकि गोवा, दमन और दीव पर 1961 ई. तक उनका अधिकार बना रहा।

भारत में डचों का आगमन (Arrival of the Dutches in India)

भारतीय उपमहाद्वीप पर डचों की उपस्थिति 1605 से 1825 ई. तक देखी जाती है। भारत आने वाली दूसरी यूरोपीय शक्ति डच ही थे। ये **नीदरलैंड** या **हॉलैंड** के निवासी थे। 1602 ई. में डच कंपनी **यूनाइटेड ईस्ट इंडिया कंपनी ऑफ नीदरलैंड** की स्थापना हुई और डच संसद के द्वारा कंपनी को युद्ध करने, संधियाँ करने, इलाके जीतने और किले बनाने का अधिकार दिया गया। फलस्वरूप **डच ईस्ट इंडिया कंपनी** के रूप में डचों ने अपनी **प्रथम फैक्ट्री 1605 ई. में** मसुलीपट्टनम **में** खोली। डचों की दिलचस्पी दक्षिण-पूर्व एशिया के मसाला बाज़ारों में सीधा प्रवेश कर नियंत्रण स्थापित करने की थी। डचों ने पुर्तगालियों से संघर्ष कर उनकी शक्ति को क्षीण कर दिया तथा भारत के सभी महत्त्वपूर्ण मसाला उत्पादन के क्षेत्रों पर नियंत्रण स्थापित कर लिया। उन्होंने पश्चिमी भारत के गुजरात में सूरत, भड़ौच, कैंबे, केरल के कोचीन, मद्रास के नेगपट्टनम, आंध्र के मसूलीपट्टनम, बंगाल के चिनसूरा, बिहार के पटना और उत्तर प्रदेश के कानपुर, आगरा में भी अपने व्यापारिक केंद्र बनाए। बंगाल में प्रथम डच फैक्ट्री की स्थापना पीपली में 1627 ई. में की गई थी। डचों द्वारा मसालों के निर्यात के स्थान पर कपड़ों को प्राथमिकता दी गई। भारत को **भारतीय वस्त्रों** के निर्यात का केंद्र बनाने का श्रेय डचों को जाता है। डचों द्वारा कपड़ों का निर्यात मुख्यत: कोरोमंडल तट एवं गुजरात से किया जाता था। व्यापारिक प्रतिद्वंद्विता को लेकर अंग्रेज़ों और डचों में 1759 ई. में **बेदरा का युद्ध** हुआ जिसमें डचों को हार का सामना करना पड़ा और अंतिम रूप से भारत में डचों का पतन हो

23

ब्रिटिश साम्राज्यवादी नीति
(British Imperialistic Policy)

भारत के प्रमुख राज्यों पर अपनी सत्ता की स्थापना के बाद ब्रिटिश कंपनी ने उसे सुदृढ़ता प्रदान करने हेतु विभिन्न औपनिवेशिक और साम्राज्यवादी नीतियों का सहारा लिया। इन नीतियों के द्वारा ईस्ट इंडिया कंपनी ने अपने हितों की पूर्ति तो की ही, साथ ही भारतीयों को अपने अधीन कर लिया।

सहायक संधि (Subsidiary Alliance)

सहायक संधि प्रणाली का सर्वप्रथम प्रयोग फ्राँसीसी गवर्नर डूप्ले ने किया था। उसने सैनिक सहायता देने के बदले भारतीय नरेशों से धन लेने की प्रथा शुरू की। अंग्रेज़ों के शासन में भी क्लाइव एवं उसके बाद के गवर्नर जनरलों के द्वारा इस प्रणाली का प्रयोग किया गया। सहायक संधि को व्यावहारिक रूप वेलेजली ने ही दिया।

वेलेजली की सहायक संधि प्रणाली
(Subsidiary Alliance system of Wellesley)

वेलेजली का मुख्य उद्देश्य कंपनी को भारत की सर्वोच्च शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित करना था और इसमें मुख्य बाधा थी फ्राँसीसियों का बढ़ता प्रभाव, क्योंकि फ्राँस की क्रांति के उपरांत नेपोलियन भारत पर अधिकार करने के प्रयास में था साथ ही टीपू जैसे भारतीय शासक फ्राँसीसियों से गठबंधन कर रहे थे। हालाँकि अवध तथा कर्नाटक के राज्य कंपनी के संरक्षण में थे। कंपनी की आर्थिक स्थिति भी सुधर चुकी थी, फिर भी एक ऐसी राजनीतिक प्रणाली की ज़रूरत थी जो भारतीय शक्तियों से फ्राँसीसियों को दूर कर सके। साथ ही, भारतीयों को ब्रिटिश निर्मित वस्तुओं का ग्राहक बना दे। वेलेजली की यह साम्राज्यवादी योजना सहायक संधि के रूप में सामने आई।

सहायक संधि की विशेषताएँ
(Features of Subsidiary Alliance)

- देशी रियासतें एक ब्रिटिश रेज़िडेंट रखेंगी जो शासन-प्रबंधन में परामर्श देगा।
- भारतीय रियासतों के आंतरिक शासन में कोई हस्तक्षेप नहीं किया जाएगा।
- वह देशी रियासत, जो संधि स्वीकार करेगी, कंपनी की स्वीकृति के बिना अपने राज्य में शत्रु राज्य के लोगों को शरण या नौकरी नहीं देगी।
- देशी रियासतों की रक्षा के लिये कंपनी वहाँ अंग्रेज़ी सेना रखेगी, जिसका खर्च उस रियासत को ही उठाना पड़ेगा। सेना के खर्च के लिये नकद धनराशि या राज्य का कुछ इलाका कंपनी को सौंपना होगा।
- देशी रियासत कंपनी की अनुमति के बिना किसी अन्य राज्य से युद्ध, संधि या मैत्री नहीं कर सकेगी अर्थात् वह अपनी विदेश नीति कंपनी को सुपुर्द कर देगी।

सहायक संधि का देशी रियासतों पर प्रभाव
(Impact of Subsidiary Alliance on Princely States)

- ब्रिटिश सैन्य सुरक्षा के कारण भारतीय रजवाड़े विलासी हो गए। उनमें स्वाभिमान एवं उत्तरदायित्व का कोई अंश शेष नहीं रहा। सुरक्षा की चिंता से मुक्त होकर वे तानाशाही करने लगे। जनता दु:खी होकर विद्रोह करने लगी, परंतु उन पर कंपनी का हाथ होने के कारण विद्रोह सफल नहीं हो पाया।
- देशी रियासतों के शासक नाममात्र के शासक रह गए, उनकी सार्वभौम शक्ति समाप्त हो गई।
- हालाँकि अंग्रेज़ रेज़िडेंट को आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप का अधिकार नहीं था, परंतु वे इसका उल्लंघन करते थे और निरंतर हस्तक्षेप करते थे। फलत: शासकों की रुचि शासन में कम हो गई।
- इस तरह की गतिविधि ने भारतीय नरेशों की राष्ट्रीय भावना, साहस, सैन्य संगठन सभी को समाप्त कर दिया। फलत: भारतीय राज्य निरंतर पतनोन्मुख हुए।

सहायक संधि से कंपनी को लाभ
(Benefits to the Company from Subsidiary Alliance)

- कंपनी का भारत में प्रभुत्व स्थापित हो गया। कंपनी की प्रतिष्ठा एवं शक्ति में वृद्धि हुई।
- फ्राँसीसियों का प्रभाव भारतीय नरेशों के राज्यों से पूर्णत: समाप्त हो गया क्योंकि अब उन्हें वहाँ नौकरी करने का अवसर प्राप्त नहीं हो सकता था।
- इस संधि से कंपनी को भारतीय राज्यों के खर्च पर एक बड़ी सेना मिल गई जो हर समय किसी भी दशा में लड़ने के लिये तैयार थी।
- अंग्रेज़ों के विरुद्ध भारतीय राज्य कोई संघ या गुट बनाने से वंचित हो गए।
- सामरिक महत्त्व के स्थानों पर कंपनी का नियंत्रण स्थापित हो गया।
- सहायक संधि के माध्यम से कंपनी की साम्राज्यवादी सीमाएँ काफी आगे बढ़ गईं।
- कंपनी को बहुत से **प्रभुसत्तापूर्ण प्रदेश** मिल गए।
- इस प्रकार सहायक संधि कंपनी के लिये अत्यंत लाभप्रद सिद्ध हुई। बहुत से राज्य कंपनी के नियंत्रण में आ गए और अब वह अपने आर्थिक व व्यापारिक हितों को पूरा कर सकती थी।
- राज्यों से सहायक संधियों का क्रम- हैदराबाद (1798 व 1800 ई.) → मैसूर (1799 ई.) → तंजौर (अक्टूबर 1799 ई.) → अवध (नवंबर 1801 ई.) → पेशवा (दिसंबर 1802 ई.) → बरार के भोंसले (दिसंबर 1803 ई.) → सिंधिया (फरवरी 1804 ई.)। इसके अतिरिक्त जोधपुर, जयपुर, बूँदी तथा भरतपुर से भी सहायक संधियाँ की गईं।

24 ब्रिटिश शासन का भारतीय अर्थव्यवस्था पर प्रभाव
(Impact of British Rule on Indian Economy)

ब्रिटिश आर्थिक नीति (British Economic Policy)

अंग्रेज़ों द्वारा आर्थिक-प्रशासनिक नीतियों को लागू करने के दौरान सदैव साम्राज्यवाद के लक्ष्यों, जैसे- कंपनी के मुनाफे में वृद्धि, विजित क्षेत्रों पर नियंत्रण आदि को ध्यान में रखा गया। अंग्रेज़ों की आर्थिक-प्रशासनिक नीतियों को **जॉन सुलिवन** की पंक्ति द्वारा समझा जा सकता है-

> "हमारी प्रणाली एक ऐसे स्पंज के रूप में काम करती है जो गंगा के किनारों से प्रत्येक अच्छी वस्तु ले लेती है फिर टेम्स के किनारों पर निचोड़ देती है।"

कंपनी ने इंग्लैंड के व्यापारियों को रिश्वत देकर भारत से दूर रखा ताकि वह अपने लक्ष्य को निर्बाध रूप से प्राप्त कर सके। किंतु आरंभ से ही ब्रिटिश उद्योगपति ब्रिटेन में भारतीय वस्त्रों की लोकप्रियता से ईर्ष्या करते थे। वस्त्रों का फैशन एकाएक बदल गया था, अंग्रेज़ों के खुरदरे ऊनी कपड़ों की जगह भारत के हल्के सूती वस्त्रों ने ले ली। प्रसिद्ध उपन्यासकार **डेनियम डिफ्फो** की शिकायत थी- "भारतीय वस्त्र हमारे घरों, हमारे कक्षों तथा हमारे शयनागारों में भी प्रवेश कर चुके हैं, पर्दे, गद्दे, कुर्सियाँ तथा अंत में बिस्तर भी मलमल या भारतीय वस्तुओं के अलावा कुछ नहीं रहे।"

भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद के विभिन्न चरण
(Different stages of British colonialism in India)

उपनिवेशवाद एक ऐसी संरचना होती है, जिसके माध्यम से किसी भी देश का आर्थिक शोषण तथा उत्पीड़न होता है और आर्थिक लाभ के साथ-साथ विदेशी जनसंख्या को विदेशी भूमि पर बसाना भी शामिल होता है। **औद्योगिक क्रांति** ने उपनिवेशवादी-व्यवस्था को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित किया और भारत भी ब्रिटेन का उपनिवेश इसी व्यवस्था के परिणामस्वरूप बना। भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद के विभिन्न चरण इंग्लैंड के आर्थिक ढाँचे से प्रभावित होते रहे इसलिये प्रत्येक चरण में गुणात्मक परिवर्तन होते रहे। इसी परिवर्तन के आधार पर ही भारत में उपनिवेशवाद को तीन प्रमुख चरण में विभाजित किया गया है-

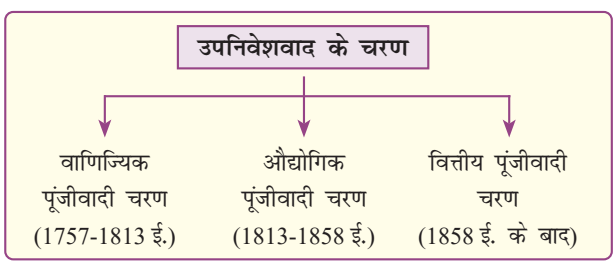

वाणिज्यिक पूंजीवादी चरण (1757-1813 ई.)
[Commercial capitalism phase (1757-1813)]

भारत में निर्मित वस्तुओं का ब्रिटेन में विक्रय को कम कराने या समाप्त कराने के लिये ब्रिटिश उद्योगपतियों ने अपनी सरकार पर दबाव डाला। 18वीं सदी के मध्य तक छापेदार या रँगे हुए सूती वस्त्रों के व्यापार पर प्रतिबंध लगाने वाला कानून बन चुका था। हॉलैंड को छोड़कर दूसरे यूरोपीय देशों ने भी भारतीय वस्त्रों के आयात पर या तो प्रतिबंध लगा दिया या उन पर भारी आयात शुल्क लगा दिये। लेकिन इन कानूनों के बावजूद भारत के रेशमी और सूती वस्त्र 18वीं सदी के मध्य तक विदेशी बाज़ारों में जमे रहे। मगर तब तक नई और विकसित प्रौद्योगिकी के आधार पर ब्रिटेन का वस्त्र उद्योग भी पनपने लगा था।

कंपनी के व्यापारिक संबंधों में गुणात्मक परिवर्तन 1757 ई. के प्लासी युद्ध के पश्चात् आया। अब बंगाल पर अपने राजनीतिक नियंत्रण के सहारे कंपनी भारतीय व्यापार और उत्पादन पर एकाधिकारपूर्ण नियंत्रण स्थापित कर सकती थी। इसके अलावा कंपनी ने भारतीय मालों का निर्यात बढ़ाने के लिये बंगाल से प्राप्त राजस्व का भी उपयोग किया। कंपनी ने अपनी राजनीतिक शक्ति का उपयोग करके बंगाल के बुनकरों पर अपनी शर्तें लाद दीं और अपना माल न केवल कम और निर्धारित दामों पर बल्कि घाटे पर भी बेचने के लिये बाध्य किया। इस प्रकार कंपनी ने भारतीय या विदेशी प्रतिद्वंद्वी व्यापारियों को बाज़ार की दौड़ से बाहर कर दिया तथा बंगाल के दस्तकारों को अधिक मज़दूरी या दाम देने से रोके रखा।

वाणिज्यिक पूंजीवादी चरण के प्रमुख लक्ष्य

- इस चरण में कंपनी का प्रमुख लक्ष्य था भारत से अत्यधिक पूंजी को एकत्रित करना।
- अंग्रेज़ भारत में न्यायिक-व्यवस्था, यातायात, संचार आदि में बिना कोई मौलिक परिवर्तन किये अधिक से अधिक पूंजी अर्जित करना चाहते थे।
- कंपनी अपनी शक्ति बढ़ाने के लिये सैनिक शक्ति, व्यापार केंद्र, मिलों आदि के लिये भारी धनराशि एकत्रित करना चाहती थी।
- भारतीय वस्तुओं को कम-से-कम कीमत पर खरीदना तथा यूरोप में इन वस्तुओं को भारी कीमत पर बेचकर अधिक- से-अधिक लाभ कमाना उनका लक्ष्य था।
- भारतीय व्यापार पर कंपनी का एकाधिकार स्थापित करना।

वाणिज्यिक पूंजीवादी चरण के प्रभाव

- शिल्पकारों को न्यूनतम जीवन निर्वाह योग्य मज़दूरी भी नहीं दी गई और वे कृषि की तरफ मुड़ने को तैयार हो गए।

25 ब्रिटिश शासन का भारतीय समाज पर प्रभाव
(Impact of British Rule on Indian Society)

ब्रिटिश शासन ने भारत की आर्थिक व्यवस्था के साथ-साथ सामाजिक व्यवस्था को भी गंभीर रूप से प्रभावित किया। ब्रिटिश शासन के साथ ही भारतीय समाज में एक नई सामाजिक व्यवस्था सामने आई जिसका आधार जाति व श्रम न होकर व्यावसायिक उपलब्धियों तथा मुक्त प्रतिस्पर्द्धा पर आधारित नई आर्थिक शक्तियाँ थीं। अंग्रेज़ों ने अपने राज्य विस्तार एवं प्रशासनिक तंत्र के साथ-साथ भारत के संदर्भ में सामाजिक-सांस्कृतिक नीतियों का विकास किया, जो ब्रिटिश औपनिवेशिक हितों के अनुसार समय-समय पर परिवर्तित होती रहीं। ब्रिटिश शासन ने समाज के विभिन्न वर्गों, यथा- ज़मींदार वर्ग, देशी राजे-रजवाड़े, कृषक वर्ग, पूंजीपति वर्ग, मज़दूर वर्ग, नारी वर्ग, आदिवासी वर्ग आदि के साथ ही भारत की शिक्षा प्रणाली, प्रेस, स्थानीय स्वशासन, लोक-सेवा तथा विदेश नीति को भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित किया। भारत में ब्रिटिश शिक्षा नीति ब्रिटिश औपनिवेशिक हितों के अनुकूल परिचालित होती थी, क्योंकि अंग्रेज़ों की शिक्षा नीति का उद्देश्य एक ऐसा वर्ग तैयार करना था जो ब्रिटिश औद्योगिक बाज़ार का भारत में विस्तार कर सके। ब्रिटिश शासनकाल के दौरान भारत में मानवजनित अकालों की संख्या बढ़ी किंतु अंग्रेज़ों द्वारा बनाई गई अकाल नीति का ज़ोर केवल उत्पादन तथा कार्य-दिवस पर ही था, श्रमिकों की सुविधाओं पर नहीं। इस काल में लोकतंत्र का चौथा स्तंभ कहा जाने वाला मीडिया, प्रेस, जनसंचार साधन आदि का भी संकुचित विकास हुआ। सिविल सेवाओं में तो भारतीयों को इस परीक्षा के योग्य ही नहीं समझा जाता था, किंतु कुछ राष्ट्रवादी नेताओं के अथक प्रयत्नों से भारतीयों को भी सिविल सेवा की परीक्षा देने का मौका मिला।

ब्रिटिश भारत में शिक्षा का विकास
(Development of Education in British India)

ईस्ट इंडिया कंपनी प्रारंभ में एक विशुद्ध व्यापारिक कंपनी थी जिसका उद्देश्य व्यापार करके केवल अधिक-से-अधिक लाभ कमाना था। 1764 ई. के बक्सर युद्ध तक कंपनी की कोई शिक्षा नीति नहीं थी, फिर भी ईसाई मिशनरी, जो व्यापारियों के साथ-साथ भारत में आ गए थे, ने भारतीय हिंदू-मुस्लिम समुदाय के सामाजिक और धार्मिक रीति-रिवाज़ों पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की। **हिंदुओं और मुसलमानों को संबोधन** शीर्षक से छापी गई पुस्तिका में अंग्रेज़ मिशनरियों द्वारा मुहम्मद साहब को एक **झूठा-पैगंबर** कहा गया तथा हिंदू धर्म को केवल मूर्ति-पूजा, अंधविश्वास तथा अज्ञान का पुंज कहा गया था। इन मिशनरियों का मुख्य उद्देश्य हिंदुओं और मुसलमानों को ईसाई बनाना था। कई विदेशी सहायता-प्राप्त पादरियों ने भारतीय समाज के पिछड़े हुए और कमज़ोर वर्गों को अपनी ओर आकर्षित करने के लिये धर्मार्थ औषधालय, अनाथालय और पाठशालाएँ भी खोलीं जहाँ निःशुल्क विद्या के अतिरिक्त भोजन और वस्त्र भी दिये जाते थे। दूसरी ओर, शिक्षा के प्रोत्साहन एवं विकास हेतु व्यक्तिगत स्तर पर भी कुछ प्रयास किये गए। ऐसे प्रयासों के कुछ प्रमुख उदाहरण इस प्रकार हैं-

- 1781 ई. में **वारेन हेस्टिंग्स** द्वारा **कलकत्ता मदरसा** स्थापित किया गया, जिसका उद्देश्य मुस्लिम कानूनों तथा इससे संबंधित अन्य विषयों की शिक्षा देना था।
- 1791 ई. में बनारस के ब्रिटिश रेज़ीडेंट **जोनाथन डंकन** के प्रयासों से हिंदू-विधि एवं दर्शन का अध्ययन करने के लिये **बनारस में संस्कृत कॉलेज** की स्थापना की गई।
- 1800 ई. में लॉर्ड वेलेजली द्वारा असैनिक अधिकारियों की शिक्षा के लिये **फोर्ट विलियम कॉलेज** की स्थापना की गई जिसका उद्देश्य कॉलेज में अधिकारियों को विभिन्न भारतीय भाषाओं तथा भारतीय रीति-रिवाज़ों की शिक्षा प्रदान करना था, किंतु 1802 ई. में डायरेक्टरों के आदेश पर यह कॉलेज बंद कर दिया गया।
- 1784 ई. में हेस्टिंग्स के सहयोगी **सर विलियम जोंस** ने **एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल** की स्थापना की, जिसके सदस्य चार्ल्स **विल्किंसन** ने पहली बार मूल **श्रीमद्भगवद्गीता** का संस्कृत से अंग्रेज़ी में अनुवाद किया। 1787 ई. में विल्किंसन द्वारा ही **हितोपदेश** का भी अनुवाद किया गया।
- 1789 ई. में विलियम जोंस ने कालिदास रचित **अभिज्ञान शाकुंतलम्** का अंग्रेज़ी अनुवाद किया तथा **गीतगोविंद** का भी अंग्रेज़ी अनुवाद किया। मनुस्मृति वह प्रथम ग्रंथ है जिसका अनुवाद सबसे पहले संस्कृत से अंग्रेज़ी भाषा में **ए कोड ऑफ जेंटू लॉज** (A code of gentoo laws) के नाम से प्रकाशित हुआ।
- ईसाई मिशनरियों ने भारत में शिक्षा के प्रसार के लिये महत्त्वपूर्ण प्रयास किये। 1799 में सीरमपुर त्रयी अस्तित्व में आई। इसकी स्थापना विलियम केरी, वार्ड तथा मार्शमैन ने की थी।

सन् 1813 के चार्टर एक्ट में शिक्षा के प्रसार के लिये एक लाख रुपए का प्रावधान भारत में किया गया, जिसमें भारत में साहित्य में पुनरुद्धार तथा विकास के लिये और स्थानीय विद्वानों को प्रोत्साहन देने के लिये एवं अंग्रेज़ी प्रदेशों के वासियों में विज्ञान के आरंभ और उन्नति के लिये खर्च करने की व्यवस्था थी इसी क्रम में राजा राम मोहन राय, डेविड हेयर, और सर हाइड ईस्ट के संयुक्त प्रयासों से सन् 1817 में कलकत्ता में हिंदू कॉलेज की स्थापना हुई। यह 1854 में महाविद्यालय बना।

आंग्ल-प्राच्य भाषा विवाद
(Anglo-oriental language controversy)

1813 ई. के चार्टर एक्ट द्वारा शिक्षा पर एक लाख रुपए खर्च करने के निर्देश के बाद भी, 1823 ई. तक कंपनी के अधिकारियों द्वारा कुछ भी खर्च नहीं किया गया। वर्षों तक देश में इस प्रश्न को लेकर काफी वाद-विवाद चलता रहा कि यह खर्च किस दिशा में किया जाए। किंतु

26 ब्रिटिश शासन के प्रति भारतीय प्रतिक्रिया
(Indian Reaction to British Rule)

ब्रिटिश शासन ने भारत की राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक व्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन किये तथा ब्रिटिश नीतियों ने भारत को इंग्लैंड का उपनिवेश बना दिया, जिसके परिणामस्वरूप ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध अनेक आंदोलन, विद्रोह तथा सैनिक विप्लव हुए। इन सभी आंदोलनों तथा विद्रोहों के प्रमुख कारणों में भारतीय शासन में विदेशी हस्तक्षेप, प्रशासनिक परिवर्तनों का होना, अर्थव्यवस्था का नष्ट होना, ग्रामीण निर्भरता की समाप्ति तथा अंग्रेज़ों की करों से संबंधित अनेक भू-राजस्व नीतियाँ आदि शामिल थे।

ब्रिटिश शासन के विरुद्ध विद्रोह तथा आंदोलन उनकी बर्बरता तथा निरंकुशता का परिणाम था जिसने भारतीय जन-मानस को झकझोर दिया, फलतः वह इन अत्याचारों के खिलाफ उठ खड़ा हुआ। इन आंदोलनों को इस प्रकार समझा जा सकता है-

जनजातीय एवं नागरिक विद्रोह
(Tribal and Civilian Revolt)

ब्रिटिश औपनिवेशिक नीतियों के प्रतिक्रियास्वरूप सबसे पहले जनजातीय विद्रोह हुए। जनजातीय लोग भारतीय समाज का हिस्सा थे किंतु उनके रीति-रिवाज़ व परंपराएँ समाज के अन्य वर्गों से अलग थीं। जब ब्रिटिश साम्राज्य का प्रसार जनजातीय क्षेत्रों में हुआ तो जंगली उत्पादों तथा संसाधनों ने औपनिवेशिक सरकार को अपनी ओर आकर्षित किया, परिणामस्वरूप उनका दोहन आरंभ हुआ। इससे जनजातीय असंतोष को बल मिला। अतः स्पष्ट है कि अंग्रेज़ी शासन के दौरान होने वाले आदिवासी जनजातीय विद्रोहों की पृष्ठभूमि बढ़ते हुए आर्थिक शोषण, प्रशासनिक जटिलताओं एवं सामाजिक असंतोष ने तैयार की। भौगोलिक स्थिति के अनुसार जनजातीय विद्रोहों को तीन भागों में बाँटा जा सकता है-

जनजातीय एवं नागरिक विद्रोह

पूर्वी भारत तथा बंगाल में विद्रोह
- संन्यासी विद्रोह
- कोल विद्रोह
- संथाल विद्रोह
- अहोम विद्रोह
- खासी विद्रोह
- पागलपंथी विद्रोह
- फराजी विद्रोह
- मुंडा विद्रोह

पश्चिम भारत में विद्रोह
- रामोसी विद्रोह
- कच्छ का विद्रोह
- भील विद्रोह
- सूरत का नमक आंदोलन
- गडकरी विद्रोह
- सावंतवाड़ी विद्रोह

मध्य एवं दक्षिण भारत में विद्रोह
- बुंदेला विद्रोह
- विजयनगर के राजा का विद्रोह
- वेलूथंपी का विद्रोह
- पॉलिगारों का विद्रोह

पूर्वी भारत तथा बंगाल में विद्रोह
(Revolt in Eastern India and Bengal)

संन्यासी विद्रोह (1770-1820, अन्य स्रोतों में 1763-1800 ई.)

प्रमुख क्षेत्र: बंगाल

प्रमुख नेता: गिरि संप्रदाय के संन्यासी मंजू शाह और देवी चौधरानी

- बंगाल में अंग्रेज़ी राज्य स्थापित होने से वहाँ एक नई अर्थव्यवस्था की शुरुआत हुई, जिसके कारण बंगाल के ज़मींदार, कृषक तथा शिल्पी आदि की स्थिति दयनीय हो गई। बंगाल में पड़े (1770 ई. का) भीषण अकाल तथा कंपनी के पदाधिकारियों की कठोरता को लोगों ने विदेशी राज्य की देन समझा।
- 1770 ई. के इस भीषण अकाल ने बंगाल के निवासियों को त्रस्त कर दिया। इससे पूर्व अंग्रेज़ों द्वारा कई प्रतिबंध लगाए गए थे जिसने बंगाल को जकड़ सा दिया था। तीर्थस्थलों की यात्रा पर लगे प्रतिबंधों से दुखी होकर **शंकराचार्य** के अनुयायी **गिरि संप्रदाय के संन्यासियों** ने अंग्रेज़ों के विरुद्ध सशस्त्र विद्रोह प्रारंभ कर दिया।
- संन्यासी विद्रोह 1770 ई. से प्रारंभ हुआ तथा 1800 ई. तक चलता रहा।
- संन्यासी लोगों ने जनता के साथ मिलकर अन्याय के विरुद्ध लड़ने की परंपरा को बनाए रखते हुए सबसे पहले कंपनी की कोठियों तथा कोषों पर आक्रमण किया। इस आंदोलन में बेदखल किये गए किसान, विघटित सिपाही, सत्ताच्युत ज़मींदार तथा धार्मिक नेता शामिल थे। आंदोलनकारियों ने बलपूर्वक धन वसूला तथा अंग्रेज़ी फैक्ट्रियों में लूटपाट की। वारेन हेस्टिंग्स ने इस विद्रोह को दबाने के लिये दमन का सहारा लिया तथा 1820 ई. तक आंदोलन को कुचल दिया। संन्यासी विद्रोह का उल्लेख **वंदे मातरम्** के रचयिता **बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय** (चटर्जी) ने अपने उपन्यास **आनंद मठ** में किया है।

27 भारतीय पुनर्जागरण : सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलन
(Indian Renaissance : Social-Religious Reform Movements)

सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलन (Social-Religious Reform Movement)

18-19वीं शताब्दी का भारतीय समाज अंधविश्वास, जाति-अव्यवस्था, वर्ण-भेद आदि रूढ़ियों के जाल में जकड़ा हुआ था। भारतीय समाज जाति प्रथा के आधार पर दो वर्गों, उच्च-वर्ग एवं निम्न वर्ग में बँटा हुआ था जिसके कारण भारत की बहुसंख्यक जनता तथा उच्च वर्गों के बीच एक दरार पैदा हो गई थी साथ ही अंग्रेज़ों की औपनिवेशिक नीतियों ने भी भारतीय समाज को बहुत प्रभावित किया। परिणामस्वरूप 19वीं शताब्दी में बौद्धिक एवं सांस्कृतिक उथल-पुथल मची। इस दौरान पश्चिमी संस्कृति के प्रभाव से भारतीयों के मन में एक नई चेतना का संचार हुआ तथा लोग अंग्रेज़ों के वास्तविक चरित्र को समझने लगे थे। भारतीय विद्वानों ने भी समाज की कमज़ोरी को पहचानकर उन्हें दूर करने के उपाय खोजे। लोग धीरे-धीरे यह मानने लगे कि अपने समाज में फिर से प्राण फूँकने के लिये मानवतावाद, विवेक पर आधारित सिद्धांत, आधुनिक विज्ञान, पश्चिमी विचार आदि तत्त्वों को आत्मसात करना पड़ेगा। 19वीं शताब्दी तक बुद्धिजीवी वर्ग इस बात में विश्वास करने लगा था कि सामाजिक और धार्मिक सुधार आंदोलन की तत्काल ज़रूरत है।

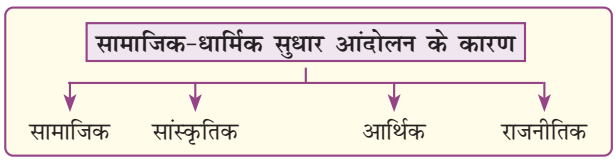

सामाजिक कारण

- ब्रिटिश शासन में अंग्रेज़ी शिक्षा के प्रसार से भारतीय बुद्धिजीवी वर्ग ने पाश्चात्य उदारवादी विचारधारा से प्रभावित होकर भारतीय सामाजिक ढाँचे एवं संस्कृति में विद्यमान कमज़ोरियों को दूर करने का प्रयास किया।
- ब्रिटिश सरकार द्वारा समाज-सुधार के लिये बनाए गए कानून भी सामाजिक-आर्थिक सुधार आंदोलन का कारण बने।
- ईसाई मिशनरियों के द्वारा ईसाई संस्कृति के प्रसार पर बल, प्रतिक्रिया स्वरूप भारतीयों द्वारा अपनी संस्कृति एवं धर्म के प्रति पुनरुत्थान प्रक्रिया पर बल दिया गया।
- प्रेस, समाचार-पत्र, पत्र-पत्रिकाओं आदि के द्वारा अंग्रेज़ों की व्यवहारहीनता, शोषण एवं क्रूरता का ज्ञान भारतीयों को हुआ। अतः भारतीयों ने अपने समाज व धर्म की रक्षा हेतु प्रयत्न आरंभ किये।

सांस्कृतिक कारण

- प्राच्यवादियों ने भारतीय अतीत और गरिमा का गुणगान किया और फिर अतीत की गरिमा पर बल देकर भारतीयों का ध्यान अपनी संस्कृति और परंपरा की ओर आकृष्ट किया।
- 19वीं शताब्दी में इस सांस्कृतिक जागरण के प्रस्फुटन का एक कारण पश्चिमी देशों द्वारा प्रचारित की जा रही अपनी जातीय, भाषायी एवं सांस्कृतिक श्रेष्ठता के विरुद्ध भारतीयों की प्रतिक्रिया भी थी।

आर्थिक कारण

- 1813 ई. के एक्ट के द्वारा मुक्त व्यापार की नीति तथा भारतीय समाज में हस्तक्षेप के परिणामस्वरूप सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलन का उदय हुआ।

राजनीतिक कारण

- आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव व विदेशी शक्ति द्वारा पराजित होने से उत्पन्न चेतना ने उन्नीसवीं सदी में एक नई जागृति को जन्म दिया।
- 19वीं शताब्दी में जाति-प्रथा के बंधन शिथिल पड़ने लगे थे, पारंपरिक स्वावलंबी ग्रामीण अर्थव्यवस्था ने अपनी पहचान खो दी थी। इन सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक परिवर्तनों ने भारतीयों के बीच एकता बढ़ाई।
- लोकतंत्र एवं राष्ट्रवाद की भावनाएँ 19वीं शताब्दी के अंतिम दशक में चरम सीमा पर थी तथा इन भावनाओं ने शीघ्र ही पुनर्जागरण की प्रक्रिया के उद्भव एवं विकास के लिये पृष्ठभूमि तैयार की।

सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलन का स्वरूप *(Nature of Social-Religious Reform Movements)*

सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलन के संबंध में विद्वानों में मतभेद है। यह आंदोलन सामाजिक एवं धार्मिक दोनों सुधारों से संबंधित था जिसका प्रमुख लक्ष्य समाज-सुधार था। चूँकि तत्कालीन समाज में अनेक कुरीतियाँ एवं आडंबर व्याप्त थे, इसीलिये धर्म में सुधारों के बगैर समाज सुधार तर्कहीन था। इस संबंध में विद्वानों में दो प्रमुख विचारधाराएँ थीं जो प्रगतिशील एवं पुनर्स्थापनावाद वर्ग में बँटी थी।

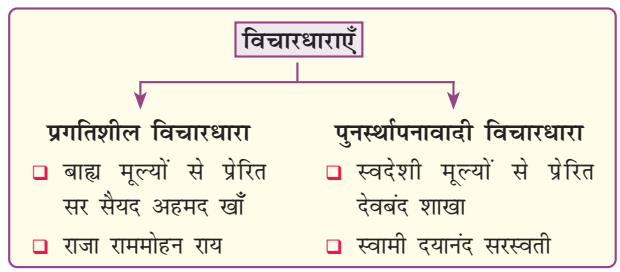

- **प्रगतिशील विचारधारा** के सुधारकों का मानना था कि तत्कालीन भारतीय समाज में व्याप्त कुरीतियों एवं रूढ़ियों का अंत तभी संभव है जब पाश्चात्य संस्कृति के कुछ ऐसे तत्त्वों को आत्मसात् किया

28

राष्ट्रवाद का उदय
(Rise of Nationalism)

राष्ट्रवाद कोई अचानक उत्पन्न होने वाली विचारधारा नहीं है बल्कि यह एक दीर्घकालिक विकासशील प्रक्रिया है। राष्ट्र के लिये एक ऐसी भावना का होना आवश्यक है जो व्यक्तियों के समूह को आत्मिक रूप से जोड़ती है और जब राष्ट्र व्यक्ति की पहचान बन जाता है तो राष्ट्रीयता जन्म लेती है और जब राष्ट्रीयता एक विचारधारा का रूप ले लेती है तब राष्ट्रवाद का उदय होता है। यही विचारधारा **राष्ट्रीय आंदोलन** या **स्वतंत्रता आंदोलन** की उत्पत्ति का महत्त्वपूर्ण कारक बनती है।

कुछ इतिहासकार भारत में राष्ट्रवाद की उत्पत्ति को **प्रेरण-अनुक्रियावाद** से स्पष्ट करते हैं जिसका आशय है- ब्रिटिश सरकार ने अपने हितों के लिये भारत में जो व्यवस्थाएँ लागू कीं, भारतीयों ने उसी पर अनुक्रिया कर राष्ट्रवादी भावना को विकसित किया। उल्लेखनीय है कि भारत में राष्ट्रवाद की उत्पत्ति एक आधुनिक संकल्पना मानी जाती है। भारत में जैसे-जैसे औपनिवेशिक शासन विभिन्न अवस्थाओं से गुज़रा वैसे-वैसे **भारतीय राष्ट्रवाद** भी विकसित होता गया। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में राष्ट्रीय राजनीतिक चेतना बहुत तेज़ी से विकसित हुई और भारत में एक संगठित राष्ट्रीय आंदोलन का सूत्रपात हुआ। इसी समय **दिसंबर 1885** में **भारतीय राष्ट्रीय कॉन्ग्रेस** की स्थापना हुई, जिसके नेतृत्व में भारतीयों ने एक लंबा और साहसपूर्ण संघर्ष चलाया और अंततः 15 अगस्त, 1947 को देश को ब्रिटिश दासता से मुक्ति दिलाई।

भारतीय राष्ट्रवाद के उदय के कारण
(Causes of Rise of Indian Nationalism)

भारत में राष्ट्रीय आंदोलन अथवा राष्ट्रवाद का उदय अनेक कारणों तथा परिस्थितियों का परिणाम था, जिन्हें निम्नलिखित रूपों में देखा जा सकता है-

विदेशी आधिपत्य *(Foreign Mastery)*

- आधुनिक भारतीय राष्ट्रवाद बुनियादी तौर पर विदेशी आधिपत्य की चुनौती के जवाब के रूप में उभरा। स्वयं ब्रिटिश शासन की परिस्थितियों ने भारतीय जनता में राष्ट्रीय भावना विकसित करने में सहायता की।
- राष्ट्रवाद की जड़ें भारतीय जनता के हितों तथा भारत में ब्रिटिश हितों के टकराव की उपज थीं। भारतीय समाज के प्रत्येक वर्ग ने यह अनुभव किया कि लंकाशायर के उद्योगपतियों तथा अंग्रेज़ों के दूसरे प्रमुख वर्गों के हितों के लिये उनके अपने हितों का बलिदान दिया जाता है।
- किसान अपने उत्पादन का एक बड़ा हिस्सा भू-राजस्व के रूप में देने से असंतुष्ट थे तथा जब कभी किसान ज़मींदारों और सूदखोरों के दमन के खिलाफ विद्रोह करते तब पुलिस तथा सेना कानून व्यवस्था के नाम पर उनको कुचल दिया करती थी।
- दस्तकार और शिल्पी वर्ग ने यह महसूस किया कि सरकार विदेशी प्रतियोगिता को प्रोत्साहन देकर उनको तबाह कर रही थी तथा उनके पुनर्वास के लिये कोई प्रयास नहीं किया जा रहा था।
- 20वीं शताब्दी में आधुनिक कारखानों, खदानों तथा बागानों के मज़दूरों ने जब कभी **मज़दूर ट्रेड यूनियन**, हड़ताल, प्रदर्शन तथा संघर्ष आदि के द्वारा स्वयं की स्थिति को सुधारने का प्रयास किया, तब सरकार का पूरा तंत्र उनके खिलाफ उठ खड़ा होता था।
- समाज के कई वर्गों ने यह भली-भाँति समझ लिया था कि बढ़ती बेरोज़गारी का समाधान केवल तीव्र औद्योगीकरण से संभव है जो एक स्वाधीन सरकार द्वारा किया जा सकता है।
- स्वयं ब्रिटिश शासन भारत के आर्थिक पिछड़ेपन का प्रमुख कारण बनता गया और यह भारत के आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, बौद्धिक तथा राजनीतिक विकास में प्रमुख बाधक तत्त्व बन चुका था।
- उभरते हुए भारतीय पूंजीपति वर्ग ने भी जल्द ही यह समझ लिया कि वह साम्राज्यवाद के कारण नुकसान उठा रहा था। अपने शैशव अवस्था में उन्हें सरकार की सक्रिय सहायता की ज़रूरत थी लेकिन कोई सहायता नहीं मिली और उन्हें विदेशी पूंजीपतियों की असमान प्रतियोगिता में खड़ा होना पड़ा।

आधुनिक शिक्षा *(Modern Education)*

- शिक्षित भारतीयों का उभरता हुआ वर्ग अपने देश की दयनीय आर्थिक व राजनीतिक स्थिति को समझने के लिये नए-नए आधुनिक ज्ञान का उपयोग कर रहा था। यह शिक्षित वर्ग आगे चलकर राष्ट्रीय आंदोलन का नेता एवं संगठनकर्त्ता बना।
- अंग्रेज़ों ने भारत में शैक्षणिक प्रणाली के आंग्ल-प्राच्य भाषा विवाद को समाप्त करते हुए आंग्ल शिक्षा को अपनाया। इस शिक्षा प्रणाली द्वारा वे भारतीयों में मानसिक गुलामी सृजित कर अपने साम्राज्य को स्थायी रूप देना चाहते थे जिसे तत्कालीन ब्रिटिश उदारवादी विचारकों ने भारत के आधुनिकीकरण से जोड़ा।
- नया शिक्षित वर्ग तत्कालीन आधुनिक मूल्यों को समझने लगा और उसमें लोकतांत्रिक आदर्शों, उदारवादी विचारों और मानव अधिकारों के प्रति संवेदना पैदा हुई।
- शिक्षित वर्ग ने जब **बेंथम** व **मिल** जैसे राजनीतिक विचारकों को पढ़ा तथा कई उदारवादी विद्वानों के लेखों व भाषणों को सुना तो उनमें भारतीयों के अधिकारों के प्रति चेतना पैदा हुई और इसी ने राष्ट्रवादी भावना के विकास की शुरुआत की।

प्रशासनिक एवं आर्थिक एकीकरण
(Adminstrative and Economic Integration)

- अंग्रेज़ों ने प्रभावी आर्थिक शोषण के लिये अलग-थलग पड़े क्षेत्रों, विशेषतः गाँवों को बाज़ार से जोड़ा जिसके कारण इन क्षेत्रों का

29

राष्ट्रीय आंदोलन
(National Movement)

भारत लंबे समय तक ब्रिटिश शासन का उपनिवेश रहा है। ब्रिटेन की औपनिवेशिक नीतियों तथा ब्रिटिश सत्ता से मुक्ति हेतु उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारत में राष्ट्रीय चेतना का विकास हुआ और एक संगठित आंदोलन की शुरुआत हुई। भारतीय इतिहास में ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध लंबे समय तक चलने वाले इस आंदोलन को राष्ट्रीय आंदोलन के नाम से जाना जाता है। इसकी औपचारिक शुरुआत 1885 ई. में कॉन्ग्रेस की स्थापना के साथ हुई जो कई उतार-चढ़ावों से गुज़रते हुए भारत की स्वतंत्रता तक अनवरत रूप से जारी रहा।

यद्यपि उन्नीसवीं शताब्दी का भारत विभिन्न जाति, धर्म, भाषा और क्षेत्र में विभाजित था तथा ब्रिटिश शासकों ने भी इस विभाजन को बनाए रखने के लिये **फूट डालो, राज करो** की नीति को अपनाया, तथापि भारत एक भौगोलिक इकाई मात्र नहीं था, बल्कि इस विविधता में सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक चेतना भी अंतर्निहित थी, जिसने राष्ट्रीय आंदोलन के आरंभ, विकास एवं सफलता की ओर अग्रसर होने में सहायता प्रदान की। विविधता के मूल में अंतर्निहित यह राष्ट्रीय चेतना ही थी जिसने राष्ट्रवाद का विकास किया तथा भाषा, धर्म, जाति के बंधन को लाँघते हुए लोगों को एक सूत्र में संगठित किया। हालाँकि यह भी सच है कि अंग्रेज़ों द्वारा स्थापित प्रशासनिक व्यवस्था तथा आधुनिक विचारों के प्रचार-प्रसार ने भी एक सीमा तक राष्ट्रवाद को प्रोत्साहित किया, लेकिन ब्रिटिश शासन का कभी भी यह उद्देश्य नहीं था कि भारत में राष्ट्रवाद का बीजारोपण हो बल्कि उन्होंने अपने औपनिवेशिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिये ही कुछ सुधार किये, जिससे भारतीयों में राष्ट्रीय चेतना का विकास हुआ और वे राष्ट्रीय आंदोलन के लिये प्रेरित हुए।

उदारवादी चरण (Moderate Phase)

भारतीय राष्ट्रीय कॉन्ग्रेस की स्थापना के साथ ही भारत में राष्ट्रीय आंदोलन के एक नए युग का आरंभ हो गया। चूँकि कॉन्ग्रेस का शुरुआती नेतृत्व जिन नेताओं ने किया, उनके स्वभाव एवं कार्य-प्रणाली उदार प्रकृति के थे, इसलिये राष्ट्रीय आंदोलन के प्रथम चरण को उदारवादी चरण के नाम से जाना जाता है। कॉन्ग्रेस के आरंभिक 20 वर्षों के काल को **उदारवादी राष्ट्रीयता** की संज्ञा दी जाती है, क्योंकि इस काल में कॉन्ग्रेस की नीतियाँ काफी उदार थीं। इस समय कॉन्ग्रेस पर समृद्धशाली मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों का प्रभाव था, जिनमें अधिकतर पत्रकार, वकील, इंजीनियर एवं डॉक्टर इत्यादि थे। ये उदारवादी नेता अंग्रेज़ी सरकार के प्रति निष्ठावान थे तथा उन्हें अपना शत्रु नहीं मानते थे। **दादाभाई नौरोजी** के इन शब्दों से अंग्रेज़ों के प्रति उनकी भावनाओं की मूर्त अभिव्यक्ति का पता चलता है- "हम ब्रिटिश प्रजा हैं, हम अपने हक की मांग कर सकते हैं। अगर हमें ब्रिटेन की सर्वश्रेष्ठ संस्थाओं से वंचित रखा जाता है तो फिर भारत को अंग्रेज़ों के स्वामित्व में रहने से क्या लाभ? यह तो एक और एशियाई निरंकुश शासन मात्र होगा।"

इस समय के उदारवादी नेताओं में फिरोज़शाह मेहता, बदरुद्दीन तैयबजी, व्योमेश चंद्र बनर्जी, सुरेंद्रनाथ बनर्जी, आनंद मोहन बोस और रमेशचंद्र दत्त प्रमुख थे। कालांतर में द्वारिकानाथ गांगुली, एम.जी. रानाडे, वीर राघवाचारी, आनंद चारलू और गोपालकृष्ण गोखले भी इसमें शामिल हो गए- ये नेता उदारवादी नीतियों एवं अहिंसक विरोध प्रदर्शन में ही विश्वास करते थे।

उदारवादियों की कार्य-प्रणाली
(Working System of Moderates)

उदारवादियों को नरमपंथी के नाम से भी जाना जाता था, उनकी कार्य-प्रणाली एक विशिष्ट तरीके की थी, जिसमें वे अपने प्रतिवेदनों, भाषणों और लेखों के माध्यम से ब्रिटिश सरकार एवं उनके द्वारा स्थापित अंग्रेज़ी राज की प्रशंसा करते थे और अपनी मांगों को उनके समक्ष रखते थे। वे अपनी उन मांगों को समाचार-पत्रों, पत्रिकाओं के माध्यम से स्पष्ट करते थे ताकि जनता पर भी उनके कार्यों का प्रभाव पड़े।

इस चरण में कॉन्ग्रेस का अधिवेशन वर्ष में मात्र तीन दिन चलता था और वार्षिक अधिवेशनों के अतिरिक्त अपने कार्यक्रमों को जारी रखने के लिये कॉन्ग्रेस के पास किसी भी संगठित तंत्र का अभाव था।

उन उदारवादियों को आरंभ में यह विश्वास था कि भारतीयों के सारे कष्टों का कारण नौकरशाही का भेदभावपूर्ण व्यवहार ही है और यदि ब्रिटिश सरकार को इस वास्तविक स्थिति से अवगत कराया जाए तो वह भारत में कल्याणकारी विकास कार्यक्रमों को बढ़ावा देगी।

उन्हें अंग्रेज़ों की न्यायप्रियता तथा उदारता का भ्रम था जिसके कारण वे एक अधिवेशन से दूसरे अधिवेशन तक समान प्रकार की मांगों से संबंधित प्रस्तावों की ही पुनरावृत्ति करते थे, चाहे ब्रिटिश सरकार उनकी मांगों को माने या न माने, वे कभी भी उग्र विरोध नहीं करते थे। उनकी मांगों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है- संवैधानिक, प्रशासनिक और आर्थिक।

उदारवादियों की संवैधानिक मांगें
(Constitutional Demands of the Moderates)

- उनकी मांग थी कि विधायिकाओं में भारतीयों की संख्या में वृद्धि की जाए।
- वायसराय की कार्यकारी परिषद में दो भारतीय सदस्यों को भी शामिल किया जाए।
- पश्चिमोत्तर प्रांत एवं पंजाब में नई परिषदें स्थापित की जाएँ।
- ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन भारत में भी उसी प्रकार से स्वशासन की स्थापना हो, जैसी कि कनाडा एवं ऑस्ट्रेलिया में स्थापित थी।

30 राष्ट्रीय आंदोलन में मज़दूरों एवं महिलाओं की सहभागिता
(Participation of Labourers & Women in National Movement)

भारत की स्वतंत्रता के लिये राष्ट्रीय आंदोलन की औपचारिक शुरुआत 1885 ई. में कॉन्ग्रेस की स्थापना के साथ हुई। आरंभ से ही इस आंदोलन में भारत के बुद्धिजीवियों एवं मध्यम वर्ग का वर्चस्व रहा जबकि मज़दूरों एवं महिलाओं की सहभागिता शुरुआती दौर में बहुत कम थी। जिस प्रकार उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में आधुनिक उद्योगों की स्थापना के साथ ही भारत में मज़दूर संघों की गतिविधियाँ दिखाई देने लगीं, उसी प्रकार राष्ट्रीय आंदोलन में जब गांधीवादी चरण की शुरुआत हुई तो महिलाओं की सहभागिता इस आंदोलन में दिखने लगी।

ब्रिटिश भारत में मज़दूर आंदोलन (Labour Movements in British India)

- ब्रिटिश भारत में मज़दूरों के शोषण, उनकी समस्याओं तथा कारखानों में विद्यमान असुविधाजनक कार्य परिस्थितियों में सुधार हेतु 1878 ई. में **सोराबजी शपूर जी बंगाली** ने सार्थक प्रयास किया। उन्होंने बंबई विधानसभा में श्रमिकों की कार्यावधि के बारे में विधेयक पेश किया परंतु वह पारित नहीं हो सका। इससे पूर्व 1870 ई. में बंगाल के शशिपाद बनर्जी ने मज़दूरों के लिये एक क्लब की स्थापना की और **भारत श्रमजीवी** नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन किया।
- भारत में गठित प्रथम श्रमिक संघ **बंबई मिल हैंड्स एसोसिएशन** था, जिसकी स्थापना 1890 ई. में **एन.एम. लोखंडे** ने की थी- लोखांडे ने 'दीनबंधु' नामक एक अंग्रेज़ी मराठी साप्ताहिक पत्र भी निकाला। इन्होंने मज़दूर आंदोलन को संगठित किया और ऐसा करने वाले प्रथम नेता भी बने।
- 1897 ई. में स्थायी सदस्यता तथा स्पष्ट नियमों के साथ पहली बार एक मज़दूर संगठन **अमलगमेटिड सोसायटी ऑफ रेलवे सर्वेंट्स ऑफ इंडिया एंड बर्मा** का गठन हुआ।
- भारतीय मज़दूर वर्ग द्वारा प्रथम संगठित हड़ताल ब्रिटिश स्वामित्व वाली रेलवे में तब हुई, जब 1899 ई. में ग्रेट इंडियन पेनिन्सुलर रेलवे में कार्यरत श्रमिकों ने कम मज़दूरी और अधिक कार्य अवधि के कारण हड़ताल कर दी।
- श्रमिक संगठनों को स्वदेशी आंदोलन के नेताओं का पूर्ण समर्थन प्राप्त था। मजदूरों की अनेक हड़तालों में वे सक्रिय रहें।
- 1908 ई. में क्रांतिकारी नेता बाल गंगाधर तिलक को **6 वर्ष की सज़ा** होने पर बंबई के कपड़ा मज़दूरों ने लगभग एक सप्ताह की हड़ताल कर दी, जो मज़दूरों की पहली राजनीतिक हड़ताल मानी जाती है।

श्रमिक संघों का गठन *(Formation of Labour Unions)*

- भारत का पहला पंजीकृत मज़दूर संगठन **मद्रास मज़दूर संघ** था, जिसकी स्थापना 1918 ई. में बी.पी. वाडिया द्वारा की गई थी।
- मज़दूरों के लिये अखिल भारतीय स्तर का प्रथम संगठन 1920 ई. में एन.एम. जोशी, जोसेफ बैपटिस्ट तथा लाला लाजपत राय के प्रयासों से **अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कॉन्ग्रेस (एटक)** के नाम से बनाया गया।
- एटक का प्रथम सम्मेलन 1920 ई. में बंबई में आयोजित किया गया, इसके प्रथम अध्यक्ष **लाला लाजपत राय** थे तथा दीवान चमनलाल महामंत्री थे।
- कॉन्ग्रेस ने अभी तक मज़दूरों की मांगों एवं अधिकारों को अपने घोषणा-पत्र में शामिल नहीं किया था। सर्वप्रथम 1920 ई. के नागपुर अधिवेशन में श्रमिकों की न्यायोचित मांग तथा उनके संघर्ष के प्रति सहानुभूति व्यक्त की गई।
- लाला लाजपत राय के अतिरिक्त सी.आर. दास, जी.ए. सेन गुप्ता, जी.एफ. एंड्रूज, सुभाष चंद्र बोस तथा जवाहरलाल नेहरू आदि नेताओं ने भी **अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कॉन्ग्रेस** (एटक) की अध्यक्षता की थी।
- गांधीजी ने अहमदाबाद मिल मज़दूरों की मांगों के लिये 1918 ई. में **अहमदाबाद टेक्सटाइल लेबर एसोसिएशन** की स्थापना की थी।
- श्रमिक संघों में वामपंथी विचारधारा के प्रचार-प्रसार के कारण एटक का विभाजन हो गया तथा एन.एम. जोशी के नेतृत्व में 1929 ई. में अखिल **भारतीय ट्रेड यूनियन फेडरेशन** की स्थापना हुई तथा वी. वी. गिरि इसके प्रथम अध्यक्ष बने।
- 1931 ई. में संगठन में पुन: विभाजन हुआ तथा एटक से अलग हुए साम्यवादी नेता देशपांडे ने **लाल ट्रेड यूनियन** की स्थापना की।
- 1938 ई. में **एटक** और **राष्ट्रीय मज़दूर संघ परिसंघ** (NTUF) के श्रमिक संघों के एक संयुक्त अधिवेशन का आयोजन नागपुर में किया गया।
- द्वितीय विश्वयुद्ध के विरोध में बंबई के मज़दूरों ने 2 अक्टूबर, 1939 को हड़ताल का आयोजन किया जिसमें 90,000 से भी अधिक मज़दूरों ने भाग लिया।
- स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व मई 1947 में एटक से अलग होकर राष्ट्रवादियों ने **भारतीय राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन कॉन्ग्रेस** की स्थापना की। इसका नेतृत्व **सरदार वल्लभभाई पटेल** ने किया था।
- भारत में ब्रिटिश शासन के दौरान 1918 से 1947 ई. तक श्रमिक संघों की संख्या (सभी छोटे-बड़े मिलाकर) 1925 तक पहुँच गई थी फिर भी स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व तक शायद ही उनकी मांगों पर ध्यान दिया गया, जिसका प्रमुख कारण उनकी निरक्षरता, बाह्य नेतृत्व पर उनकी निर्भरता, राजनीतिक चेतना का अभाव एवं आपसी फूट का शिकार होना रहा है।

31 ब्रिटिशकालीन महत्त्वपूर्ण अधिनियम (Important Acts of British Period)

ब्रिटिश भारत में लाये गए प्रमुख अधिनियम (Major Acts brought in British India)

1765 ई. में मुगल सम्राट शाह आलम द्वितीय के एक फरमान से ईस्ट इंडिया कंपनी को बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी प्राप्त हो गई और उसके बदले कंपनी ने **26 लाख रुपए** वार्षिक मुगल सम्राट को देना स्वीकार किया। इसका श्रेय **लॉर्ड क्लाइव** को प्राप्त है। बंगाल, बिहार एवं उड़ीसा में कंपनी द्वारा दीवानी ग्रहण करने के पश्चात् इन क्षेत्रों में प्रशासनिक अव्यवस्था तथा अराजकता का वातावरण व्याप्त हो गया। कंपनी के कर्मचारी जनता का अधिकाधिक शोषण करने लगे, क्योंकि वे शीघ्र ही धनाढ्य बनकर इंग्लैंड वापस जाना चाहते थे। विस्तृत प्रदेश पर कब्जा, सेना का रख-रखाव तथा विभिन्न युद्धों से कंपनी पर आर्थिक बोझ बढ़ जाने के कारण वह अपने कर्मचारियों के वेतन का भुगतान करने में भी असमर्थता का अनुभव कर रही थी। 1772 ई. में तो आर्थिक अस्थिरता बहुत बढ़ गई थी, इसीलिये ब्रिटिश संसद ने कंपनी के विविध कार्यों की जाँच के लिये एक प्रवर समिति तथा एक गुप्त समिति गठित की। 1773 ई. में गुप्त समिति ने अपना अंतिम प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। इस प्रतिवेदन के फलस्वरूप **लॉर्ड नार्थ** ने 18 मई को ब्रिटिश संसद में अपना प्रसिद्ध ऐतिहासिक विधेयक प्रस्तुत किया, जो बाद में **रेग्यूलेटिंग एक्ट** कहलाया।

रेग्यूलेटिंग एक्ट, 1773 *(The Regulating Act, 1773)*

भारत के संवैधानिक इतिहास में 1773 ई. का रेग्यूलेटिंग एक्ट, जो गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्स के काल में पारित हुआ था, विशेष महत्त्व रखता है। यह अधिनियम भारत में कंपनी के प्रशासन पर ब्रिटिश संसदीय नियंत्रणों के प्रयासों की शुरुआत थी। अब कंपनी के शासनाधीन क्षेत्रों का प्रशासन कंपनी के व्यापारियों का निजी मामला नहीं रहा। 1773 ई. के रेग्यूलेटिंग एक्ट से भारत में कंपनी के शासन के लिये पहली बार लिखित संविधान (Written Constitution) प्रस्तुत किया गया। रेग्यूलेटिंग एक्ट के प्रमुख प्रावधान निम्नलिखित हैं-

- इस अधिनियम (एक्ट) के द्वारा 1774 ई. में कलकत्ता में एक **उच्चतम न्यायालय** (Supreme Court) की स्थापना की गई जिसमें एक मुख्य न्यायाधीश, **सर एलिजाह इंपे** (Sir Elijah Impey) तथा तीन अवर न्यायाधीशों **चेंबर्स, लिमैस्टर** एवं **हाइड** की नियुक्ति की गई। उच्चतम न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध अपील लंदन स्थित प्रिवी काउंसिल (Privy Council) में की जा सकती थी। इस उच्चतम न्यायालय को प्राथमिक तथा पुनर्विचार संबंधी अधिकार दिये गए थे।
- मद्रास एवं बंबई प्रेसीडेंसियों को कलकत्ता प्रेसीडेंसी के अधीन कर दिया गया जिसका प्रमुख गवर्नर जनरल होता था। बंगाल में एक प्रशासक मंडल बनाया गया, जिसमें गवर्नर जनरल (अध्यक्ष के रूप में) तथा चार सदस्य नियुक्त किये गए। इन सदस्यों को गवर्नर या पार्षद कहा जाता था। इस मंडल में बहुमत से निर्णय होते थे, परंतु मत बराबर होने की स्थिति में अध्यक्ष अपना निर्णायक मत देता था।
- प्रशासक मंडल के सदस्यों का निर्वाचन पाँच वर्षों के लिये किया जाता था तथा ये केवल कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स की सिफारिश पर ब्रिटिश क्राउन द्वारा ही हटाए जा सकते थे।
- 1773 ई. के रेग्यूलेटिंग एक्ट के अनुसार, कंपनी के कर्मचारी किसी भी प्रकार का उपहार, दान या पारितोषिक ग्रहण नहीं कर सकते थे।
- इस एक्ट द्वारा गवर्नर जनरल का वेतन 25 हज़ार पौंड, गवर्नर का 10 हज़ार पौंड, उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश का 8 हज़ार पौंड तथा अवर न्यायाधीश का वेतन 6 हज़ार पौंड वार्षिक निश्चित कर दिया गया।
- किसी भी यूरोपीय शक्ति द्वारा सुदूर सभ्य लोगों के देश में प्रशासन करने का यह प्रथम प्रयत्न था। इस प्रकार रेग्यूलेटिंग एक्ट के माध्यम से एक ईमानदार शासन का आधारभूत सिद्धांत निर्धारित किया गया तथा इस नियामक अधिनियम के द्वारा ब्रिटिश भारत के लिये एक लिखित संविधान प्रणाली का सूत्रपात हुआ। वास्तव में इस अधिनियम के माध्यम से 'एक व्यक्ति अथवा कुछ व्यक्तियों के स्थान पर एक संस्था के शासन' की स्थापना हो गई।

पिट्स इंडिया एक्ट, 1784 *(The Pitt's India Act, 1784)*

पिट्स इंडिया एक्ट से पहले फॉक्स ने इंडिया बिल प्रस्तुत किया था, जिसके अनुसार कंपनी की राजनीतिक एवं सैनिक शक्ति 7 आयुक्तों के बोर्ड को सौंपी जानी थी तथा उनके अधीनस्थ **9 उपनिदेशकों** को व्यापारिक कार्य दिये जाने थे। यह बिल हाउस ऑफ कॉमंस में पारित हो गया परंतु हाउस ऑफ लॉर्ड्स में पारित नहीं हो सका। परिणामस्वरूप लॉर्ड नार्थ और फॉक्स की मिली-जुली सरकार को त्याग-पत्र देना पड़ा। यह पहला और अंतिम अवसर था जब किसी भारतीय मुद्दे पर ब्रिटिश सरकार गिर गई। कंपनी पर अपने प्रभाव को मज़बूत करने के उद्देश्य से ब्रिटिश संसद ने 1784 ई. में पिट्स इंडिया एक्ट पारित किया। इस एक्ट के माध्यम से छह सदस्यीय **नियंत्रण बोर्ड** (Board of Control) की व्यवस्था की गई। इस नियंत्रण बोर्ड को भारतीय प्रशासन के संबंध में निरीक्षण, निर्देशन तथा नियंत्रण संबंधी व्यापक अधिकार दिये गए हालाँकि कंपनी के व्यापार को अछूता छोड़ दिया गया। इस एक्ट के प्रमुख प्रावधान इस प्रकार थे-

- भारत का प्रशासन **गवर्नर जनरल व उसकी तीन सदस्यीय परिषद** के हाथ में रहेगा। परिषद सहित गवर्नर जनरल को इस बात का अधिकार होगा कि वह अन्य प्रेसीडेंसियों के कार्यों का निरीक्षण, नियंत्रण तथा निर्देशन कर सके।

32 ब्रिटिश गवर्नर, गवर्नर जनरल, वायसरॉय
(British Governor, Governor General, Viceroy)

भारत में ब्रिटिश कंपनी के आगमन के साथ ही गवर्नर अथवा गवर्नर जनरल का नाम सुना जाने लगा। सामान्यत: यह पद भारत में कंपनी के सर्वोच्च पदाधिकारी को प्रदान किया जाता था। गवर्नर जनरल ब्रिटिश भारत का एक सर्वोच्च अधिकारी होता था। यह पद केवल अंग्रेज़ों के लिये आरक्षित था। ब्रिटिश भारत में किसी भी भारतीय को इस पद पर नहीं रखा गया। 1858 ई. तक गवर्नर जनरल को ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के निदेशकों द्वारा चयनित किया जाता था और वह उन्हीं के प्रति उत्तरदायी होता था। 1858 ई. के अधिनियम के द्वारा गवर्नर जनरल को वायसरॉय कहा जाने लगा और अब उसकी नियुक्ति में ब्रिटेन के महाराजा, ब्रिटिश सरकार और भारत के राज्य सचिव की भूमिका होने लगी जो भारत के स्वतंत्र होने तक चलती रही।

बंगाल के गवर्नर *(Governor of Bengal)*

रॉबर्ट क्लाइव (1757-60, 1765-67 ई.)

- क्वाइव को 1757 ई. में ईस्ट इंडिया कंपनी ने बंगाल का गवर्नर नियुक्त किया। इसने अवध के नवाब शुजाउद्दौला तथा मुगल बादशाह शाह आलम द्वितीय के साथ 1765 ई. में इलाहाबाद की संधि की तथा बंगाल में **द्वैध शासन** की स्थापना की।
- इसने कंपनी के कर्मचारियों द्वारा उपहार लेने पर रोक लगा दी तथा **सोसाइटी फॉर ट्रेड** की स्थापना की।

हालवेल (1760 ई.)

- हालवेल क्लाइव का स्थानापन्न गवर्नर बना। इसी ने **ब्लैक होल** की घटना (1756 ई.) का वर्णन किया था।

वेंसिटार्ट (1760-65 ई.)

- इसके समय में ही प्रसिद्ध बक्सर का युद्ध हुआ, जिसमें कंपनी की सेना ने नवाब मीर कासिम, अवध के नवाब शुजाउद्दौला तथा मुगल बादशाह शाह आलम द्वितीय की संयुक्त सेना को पराजित किया।

वेरेलस्ट (1767-69 ई.)

- क्लाइव के बाद वेरेलस्ट को बंगाल का गवर्नर बनाया गया।

जॉन कर्टियर (1769-72 ई.)

- इसके समय 1770 ई. में बंगाल में आधुनिक भारत का प्रथम अकाल पड़ा।

वॉरेन हेस्टिंग्स (1772-74 ई.)

- वॉरेन हेस्टिंग्स बंगाल का अंतिम गवर्नर था, जिसने बंगाल में स्थापित **द्वैध शासन** को समाप्त कर दिया।

बंगाल के गवर्नर जनरल *(Governor General of Bengal)*

1773 ई. के रेग्यूलेटिंग एक्ट के अनुसार बंगाल के गवर्नर को अब अंग्रेज़ी क्षेत्रों का गवर्नर जनरल कहा जाने लगा, जिसका कार्यकाल 5 वर्षों का निर्धारित किया गया। मद्रास एवं बंबई के गवर्नर को भी इसके अधीन कर दिया गया। इसलिये उस समय बंगाल के गवर्नर वॉरेन हेस्टिंग्स को ही बंगाल का गवर्नर जनरल कहा गया।

वारेन हेस्टिंग्स (1774-85 ई.)

- इसके समय बंगाल में द्वैध शासन व्यवस्था का अंत कर बंगाल, बिहार, उड़ीसा को कंपनी के सीधे प्रशासन के अंतर्गत लाया गया।
- इसके शासनकाल में ही 1773 ई. के रेग्यूलेटिंग एक्ट के तहत **'कलकत्ता में एक उच्चतम न्यायालय'** की स्थापना की गई।
- इसने राजकीय कोषागार को मुर्शिदाबाद से हटाकर कलकत्ता में स्थापित किया तथा कलकत्ता में ही सरकारी टकसाल की स्थापना की।
- इसने 1781 ई. में कलकत्ता में प्रथम मदरसा स्थापित किया ताकि मुस्लिम शिक्षा का विकास हो।
- इसके ही संरक्षण में चार्ल्स विलकिंस ने गीता का अंग्रेज़ी में अनुवाद किया तथा सर विलियम जोंस ने 1784 ई. में **'द एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल'** की स्थापना की।
- 1780 ई. में भारत का पहला समाचार-पत्र 'द बंगाल गजट' का प्रकाशन **'जेम्स ऑगस्टस हिक्की'** द्वारा किया गया।
- प्रथम आंग्ल-मराठा युद्ध (1775-82) एवं द्वितीय आंग्ल-मैसूर युद्ध (1780-84) हेस्टिंग्स के शासनकाल में ही लड़ा गया।

लॉर्ड कॉर्नवालिस (1786-93 ई.)

- इसके समय में ही समस्त ज़िलों का अधिकार कलेक्टरों को सौंप दिया गया तथा इसने कलकत्ता, मुर्शिदाबाद, ढाका और पटना में 4 प्रांतीय न्यायालयों की स्थापना की।
- कॉर्नवालिस को ही **'भारतीय सिविल सेवा का जनक'** माना जाता है। उसी ने न्यायिक क्षेत्र में **'शक्ति के पृथक्करण'** का सिद्धांत दिया तथा कॉर्नवालिस संहिता एवं रेवेन्यू बोर्ड की स्थापना की।
- इसने कंपनी के कर्मचारियों के व्यक्तिगत व्यापार पर रोक लगा दी तथा प्रत्येक ज़िले में पुलिस थाने की स्थापना की और एक दारोगा को उसका इंचार्ज बनाया गया।
- कॉर्नवालिस ने प्रशासनिक व्यवस्था का यूरोपीयकरण किया तथा बिहार, बंगाल, उड़ीसा आदि क्षेत्रों में भू-राजस्व की स्थायी बंदोबस्त प्रणाली (1793 ई.) को लागू किया।

33

गणतंत्र के रूप में भारत का उदय
(Rise of India as a Republic)

स्वतंत्रता के बाद भारत का एक राष्ट्र के रूप में उभरना अचानक घटित होने वाली घटना न होकर एक ऐतिहासिक प्रक्रिया का परिणाम था। भारतीय सभ्यता में विविधता के लक्षणों को हम प्राचीन काल से ही देख सकते हैं। जैसा कि कवि **रवींद्रनाथ टैगोर** ने भी माना है कि "भारत की एकता भावनाओं की एकता है।" स्वतंत्रता आंदोलन ने भारतीयों को राजनीतिक व भावनात्मक रूप से जोड़ दिया था और भारत को एक राष्ट्र का स्वरूप दे दिया था, लेकिन अभी भी भारत को पूरी तरह से राष्ट्र नहीं कहा जा सकता था, बल्कि यह राष्ट्र बनने की प्रक्रिया में था। भारतीय राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया दीर्घकालीन व सतत् रूप से चलने वाली प्रक्रिया थी।

राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लेने वाले नेतागण, जो विभिन्न क्षेत्र, भाषा व धर्म से संबद्ध थे, भी जब इस नए गणतंत्र की बुनियाद रख रहे थे तो उन्होंने भारत के एकीकरण और राष्ट्रीय एकता की प्रक्रिया को न सिर्फ बनाए रखना चाहा बल्कि उसे भविष्य में और अधिक विकसित करने के बारे में भी सोचा।

राष्ट्र निर्माताओं ने भारत की विविधता को एक समस्या के रूप में न देखते हुए सकारात्मक दृष्टिकोण के साथ इस विविधता को एक शक्ति का स्रोत माना, क्योंकि भारत दुनिया का सर्वाधिक जटिल सांस्कृतिक विभिन्नताओं वाला देश है। अत: स्वतंत्र भारत का निर्माण **विविधता में एकता** की अवधारणा के साथ हुआ। हालाँकि एक राष्ट्र के रूप में भारत के निर्माण में तमाम जटिलताएँ भी मौजूद थीं परंतु स्वतंत्रता उपरांत भारतीय राष्ट्र का निर्माण एक वृहद् रणनीति के तहत किया गया था। इस रणनीति का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पक्ष संविधान था (क्योंकि संविधान निर्माताओं ने भारतीय संविधान में समस्त नागरिकों को धर्म, जाति व लिंग आधारित भेदभाव को समाप्त कर, समाज के हर वर्ग को पूर्ण समानता देने की बात कही)। आरक्षण तथा सकारात्मक प्रतिबद्धता के माध्यम से भारतीय संविधान ने वंचित वर्गों के हितों को पुष्ट करने का प्रयास किया। इस संविधान को **26 जनवरी, 1950** को पूर्णरूपेण लागू करने के साथ ही भारत का उदय गणतंत्र के रूप में हुआ।

हालाँकि भारतीय राष्ट्रीय एकता को मज़बूत बनाने का काम संविधान के माध्यम से किया गया, फिर भी कुछ विखंडनकारी तत्त्व उभरने में कामयाब रहे। इन तत्त्वों के कारण भारतीय एकता पर विखंडित होने का खतरा मँडराने लगा। स्वतंत्रता के बाद के आरंभिक वर्षों में सबसे बड़ा विभाजनकारी मुद्दा भाषा की समस्या थी। राज्यों के पुनर्गठन में भी भाषा के कारण समस्या उत्पन्न होने लगी थी।

राज्यों का पुनर्गठन (Reorganization of States)

भाषा व संस्कृति का गहरा संबंध होता है तथा इसका असर जनता के रीति-रिवाज़ों पर भी पड़ता है। वैसे भी हिंदुस्तान विविधताओं से भरा देश है, जहाँ कई प्रकार की भाषाएँ, विभिन्न लिपियाँ, व्याकरण, शब्द-भंडार व साहित्यिक परंपराएँ पहले से ही विद्यमान हैं।

राष्ट्रीय कॉन्ग्रेस पार्टी ने सर्वप्रथम **1917 ई.** में ही स्वतंत्रता के बाद होने वाले राज्यों के गठन को भाषायी आधार पर करने के प्रति अपनी प्रतिबद्धता व्यक्त की थी। **1920 ई.** में कॉन्ग्रेस के **नागपुर अधिवेशन** के बाद भाषायी आधार पर ही कॉन्ग्रेस प्रदेश कमेटियों का गठन हुआ था। इससे उपरोक्त आधारों पर भाषायी गठन के सिद्धांत को बढ़ावा मिला। भाषा के आधार पर कॉन्ग्रेस की उपसमितियों को संगठित करने के निर्णय का गांधीजी ने भी स्वागत किया था। स्वतंत्रता के बाद नए भारत में प्रांतों का गठन भाषायी आधार पर करने का समर्थन महात्मा गांधी, पं. नेहरू, सरदार पटेल व अन्य कॉन्ग्रेसी नेताओं द्वारा भी किया गया था।

परंतु स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत देश के सामने भाषा के आधार पर राज्यों के पुनर्गठन की जटिलताएँ समस्या बनकर खड़ी हो गईं, क्योंकि ब्रिटिश भारत में भारतीय प्रदेशों की जो सीमाएँ बनाई गई थीं, वे ब्रिटिश हितों के अनुरूप व अतार्किक थीं। इन प्रदेशों की सीमाओं का निर्धारण करते समय ब्रिटेन द्वारा भाषा व संस्कृति की समरूपता का ध्यान नहीं रखा गया था।

अंग्रेज़ों ने भारत को अपना उपनिवेश बनाने के बाद प्रशासनिक सुविधा को ध्यान में रखते हुए मनमाने तरीके से भारत को नए सिरे से बड़े-बड़े प्रांतों में बाँट दिया, एक भाषा बोलने वालों की भू-क्षेत्रीय समरसता पूरी तरह से भंग कर दी गई। बहुभाषी व बहुजातीय प्रांत बनाए गए। अत: इस विषमता को समाप्त करने हेतु कॉन्ग्रेस के शीर्ष नेताओं ने स्वतंत्रता उपरांत भाषायी आधार पर राज्यों के पुनर्गठन का विचार बनाया परंतु देश के विभाजन के बाद धार्मिक आधार पर लोगों में दूरियाँ बढ़ने के कारण भाषायी आधार पर एक नई दूरी पैदा करने के पक्ष में पं. नेहरू, सरदार पटेल, सी. राजगोपालाचारी सहित कॉन्ग्रेस का शीर्ष नेतृत्व अब नहीं था। अत: सर्वप्रथम संविधान सभा ने एस.के. धर के नेतृत्व में **धर आयोग** का गठन किया जिसने भाषायी आधार पर राज्यों के पुनर्गठन की मांग ठुकरा दी।

धर आयोग

भाषा के आधार पर राज्यों का पुनर्गठन उचित है या नहीं, इसकी जाँच के लिये संविधान सभा के अध्यक्ष **डॉ. राजेंद्र प्रसाद** ने इलाहाबाद उच्च न्यायालय के अवकाश-प्राप्त न्यायाधीश **एस.के. धर** की अध्यक्षता में **1948 ई.** में चार सदस्यीय एक आयोग का गठन किया। इस आयोग ने राष्ट्रीय एकता को खतरा एवं प्रशासन को भारी असुविधा का तर्क देकर भाषा के आधार पर राज्यों के पुनर्गठन का विरोध किया और **प्रशासनिक सुविधा** के आधार पर राज्यों के पुनर्गठन का समर्थन किया।

34

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् प्रमुख घटनाक्रम
(Major Events after Independence)

भारत को 15 अगस्त, 1947 को आज़ादी प्राप्त होने के उपरांत पं. जवाहरलाल नेहरू ने संविधान सभा तथा राष्ट्र को संबोधित करते हुए **ट्रिस्ट विद डेस्टिनी** नामक अपने अविस्मरणीय भाषण में भारतीय जनता की भावनाओं को व्यक्त करते हुए कहा था- "मध्य रात्रि की इस बेला में जब पूरी दुनिया नींद के आगोश में सो रही है, हिंदुस्तान एक नई ज़िंदगी और आज़ादी के वातावरण में अपनी आँखें खोल रहा है। यह एक ऐसा क्षण है जो इतिहास में बहुत ही कम प्रकट होता है। जब हम पुराने युग से एक नए युग में प्रवेश करते हैं, तब एक युग का अंत होता है और किसी राष्ट्र की लंबे समय से दबी हुई आत्मा मुखर हो उठती है। उचित यही है कि हम इस पुनीत क्षण में भारत और उसकी जनता की सेवा के प्रति और उससे भी व्यापकतर मानवता के हित में समर्पित होने का संकल्प करें।"

स्वतंत्र भारत के सामने कई समस्याएँ विकराल रूप में विद्यमान थीं। सर्वप्रथम नेहरू मंत्रिमंडल की ज़िम्मेदारी इन समस्याओं का समाधान निकालने की थी। आज़ाद भारत के पास उच्च क्षमता व आदर्श प्रस्तुत करने वाले नेता मौजूद थे। इन नेताओं ने पं. नेहरू के नेतृत्व में देश की समस्याओं का समाधान निकालने के प्रति प्रतिबद्धता दिखाई। इनमें अधिकांशत: वही लोग थे, जिन्होंने स्वतंत्रता के लिये लड़े गए आंदोलन में प्रमुख रूप से भूमिका निभाई थी। इन नेताओं में सरदार वल्लभभाई दृढ़ इच्छाशक्ति के स्वामी तथा प्रशासनिक कार्यों में निपुण थे। इनके अलावा अबुल कलाम आज़ाद, डॉ. राजेंद्र प्रसाद, सी. राजगोपालाचारी, सरोजिनी नायडू आदि विद्वत्ता और पांडित्य से भरपूर नेता थे।

स्वतंत्र भारत के समस्त नेता व्यक्तिगत रूप से ईमानदार तथा सादा जीवन व्यतीत करने वाले थे। राष्ट्रीय आंदोलन के मूल्यों व आदर्शों के प्रति इन सभी नेताओं ने आपसी सहमति प्रदर्शित की थी तथा सभी के द्वारा एक सुदृढ़ भारत के निर्माण का प्रयास किया गया। आज़ाद भारत का प्रथम मंत्रिमंडल न केवल एक समावेशी भारत का प्रतिनिधित्व करता था बल्कि यह असहमतियों के प्रति परस्पर सहमति के जज़्बे का भी द्योतक था।

इसके अतिरिक्त पहले मंत्रिमंडल की एक अन्य प्रमुख विशेषता यह थी कि इसमें समाज के विभिन्न वर्गों के प्रतिनिधित्व का ध्यान रखा गया था, जैसे- स्वास्थ्य मंत्री राजकुमारी अमृत कौर महिलाओं का तथा डॉ. भीमराव अंबेडकर व जगजीवन राम आदि पिछड़े समुदाय का प्रतिनिधित्व करते थे।

रियासतों का एकीकरण (Integration of Princely States)

स्वतंत्रता के समय भारत के अंतर्गत तीन तरह के क्षेत्र थे। पहला ब्रिटिश भारत के क्षेत्र (ब्रिटिश प्रांत) जो कि भारत के गवर्नर जनरल के सीधे नियंत्रण में थे। दूसरे ऐसे क्षेत्र थे जो देशी राजाओं के नियंत्रण में (राजा के शासन के अधीन लेकिन ब्रिटिश राजशाही से संबद्ध) थे, तीसरे प्रकार के अंतर्गत फ्राँस और पुर्तगाल के औपनिवेशिक क्षेत्र (चंद्रनगर, पांडिचेरी, गोवा आदि) थे। इन सभी क्षेत्रों को एक राजनीतिक इकाई के रूप में एकीकृत करना भारतीय राष्ट्रीय कॉन्ग्रेस का घोषित लक्ष्य था। स्वतंत्र भारत की अंतरिम सरकार ने समय के साथ इन लक्ष्यों को हासिल भी किया।

स्वतंत्रता के समय देशी रियासतों की कुल संख्या 500 से अधिक थी। इनके आकार, हैसियत तथा रियासती संरचना में भी भिन्नता थी। जहाँ एक तरफ कश्मीर व हैदराबाद जैसी बड़ी रियासतें थीं, जो किसी यूरोपियन देश के बराबर थीं, तो वहीं दूसरी तरफ इतनी छोटी रियासतें भी थीं, जिनके तहत केवल एक अथवा दो दर्जन गाँव आते थे।

कंपनी शासनकाल में ही अनेक संधियों के माध्यम से इन देशी रियासतों ने ब्रिटेन को 'सर्वोच्च शक्ति' स्वीकार कर लिया था। इन रियासतों को कच्चे माल, औद्योगिक उत्पादन और रोज़गार के अवसरों के लिये ब्रिटिश भारत पर निर्भर रहना पड़ता था। इनमें से कई देशी रियासतों के पास अपनी मुद्रा, रेलवे लाइन तथा मुहरें भी थीं। देश के लगभग 40% भू-भाग पर विस्तारित अधिकांश रियासतों में स्वतंत्र होने की महत्त्वाकांक्षा थी, जिसे ब्रिटिश प्रधानमंत्री क्लीमेंट एटली द्वारा 20 फरवरी, 1947 की इस घोषणा से बल मिला कि 'भारत की स्वतंत्रता' के साथ ही देशी रियासतें या तो भारत में शामिल हों या पाकिस्तान में या स्वतंत्र रहें। यही वज़ह थी कि कुछ रियासतों ने स्वयं के स्वतंत्र रहने का निर्णय भी कर लिया, परंतु भारत के एकीकरण में यह एक समस्या थी। अत: पटेल-मेनन की जोड़ी ने **पुरस्कार एवं छड़ी** की नीति अपनाकर इस एकीकरण को पूरा किया।

राष्ट्रीय एकता दिवस

भारत में राष्ट्रीय एकता दिवस 31 अक्टूबर को सरदार वल्लभभाई पटेल की जयंती के रूप में मनाया जाता है। पहली बार राष्ट्रीय एकता दिवस 2014 ई. में मनाया गया। वे भारत के स्वतंत्रता संग्राम सेनानी रहे एवं स्वतंत्र भारत के प्रथम गृहमंत्री और बाद में उप-प्रधानमंत्री भी बने। इन्हें भारत का 'लौहपुरुष' भी कहा जाता है।

उस समय सरदार पटेल अंतरिम सरकार में उप-प्रधानमंत्री के साथ देश के गृहमंत्री भी थे। उन्होंने देशी रियासतों से प्रतिरक्षा, विदेश तथा संचार मामले भारतीय संघ को सौंपने को कहा, जिसका उपयोग पहले भी इन रियासतों के द्वारा न करके ब्रिटिश भारत सरकार द्वारा किया जाता था। उपरोक्त निर्देशों के आधार पर अधिकांश रियासतों ने भारत में शामिल होना स्वीकार कर लिया, परंतु निम्नलिखित रियासतों ने विलग रहने की घोषणा की-

- कश्मीरइ
- जोधपुर
- हैदराबाद
- पुर्तगाली/फ्राँसीसी क्षेत्र
- त्रावणकोर
- जूनागढ़
- भोपाल

35

मध्य प्रदेश की प्रमुख रियासतें
(Major States of Madhya Pradesh)

सिंधिया राजवंश/ग्वालियर रियासत (Scindia dynasty/ Gwalior State)

ग्वालियर का पूर्ववर्ती राज्य 1398 में दिल्ली सल्तनत का हिस्सा बना। तत्पश्चात् 1398 में ग्वालियर तोमरों के नियंत्रण में आ गया। 1528 से 1731 ई. तक यह क्षेत्र मुगलों के कब्ज़े में रहा। 1726 में पेशवा बाजीराव-I ने रानोजी सिंधिया, मल्हारराव होल्कर तथा पवार को मालवा क्षेत्र में चौथ राजस्व (25% हिस्सा) और सरदेशमुखी (10 प्रतिशत से अधिक और ऊपर-चौथ) वसूलने के लिये नियुक्त किया था। रानोजी सिंधिया ने 1731 में मालवा क्षेत्र के एक बड़े हिस्से को और वहाँ की संपत्ति को हासिल किया।

पेशवा बाजीराव-I के द्वारा किये गए बँटवारे के साथ ही सिंधिया रियासत को मान्यता मिल गई। रानोजी सिंधिया सिंधिया रियासत के संस्थापक थे जिन्होंने अपने ग्वालियर राज्य की राजधानी प्राचीन शहर उज्जैन को बनाया। 1810 तक उज्जैन शहर सिंधिया राजघराने की राजधानी रहा।

- रानोजी सिंधिया का मूल स्थान महाराष्ट्र के सतारा ज़िले में कन्हेरखेड़ा (Kanher Kheda) नामक स्थान पर है।
- रानोजी सिंधिया के पाँच पुत्र थे- जयप्पा, दत्ताजी, जोतिबा, तुकाजी और महादजी। रानोजी के बाद उनके पुत्र जयप्पा ने राज्य का शासन सँभाला किंतु 1759 में नागपुर में उसकी हत्या कर दी गई। इसके बाद शासन की बागडोर उसके पुत्र जनकोजी ने सँभाली किंतु 1761 के पानीपत के युद्ध में उसकी मृत्यु हो गई। इसके बाद महादजी सिंधिया ने 1761 में ग्वालियर रियासत का शासन अपने हाथों में ले लिया।

ग्वालियर रियासत का अस्तित्व भारत की आजादी तक 200 वर्षों से भी अधिक समय तक बना रहा।

- तीसरे आंग्ल-मराठा युद्ध (1817-19 ई.) के दौरान नवंबर 1817 में अंग्रेज़ों ने दौलतराव सिंधिया के साथ ग्वालियर की संधि की। इस संधि के अनुसार दौलतराव सिंधिया को पिंडारियों के दमन में अंग्रेज़ों का सहयोग करना था तथा चंबल नदी से दक्षिण-पश्चिम के राज्यों पर से अपना प्रभाव हटाना था।
- 1818 ई. से मराठा संघ और अंग्रेज़ों के युद्ध में सिंधिया अंग्रेज़ों के अधीन हो गए और 1947 तक रजवाड़े के रूप में बने रहे।
- 1857 के स्वतंत्रता संग्राम के दौरान ग्वालियर रियासत के महाराजा जयाजी राव सिंधिया थे।
- जीवाजी राव सिंधिया 1925 से 15 अगस्त, 1947 तक ग्वालियर रियासत के महाराजा रहे।

ग्वालियर रियासत (सिंधिया राजवंश) के प्रमुख शासक *[Major Rulers of Gwalior State (Sindia Dynasty)]*

महादजी सिंधिया (माधवराव सिंधिया)

महादजी सिंधिया (महादजी शिंदे) जिन्हें माधवराव सिंधिया-I के नाम से भी जाना जाता है। माधवराव सिंधिया ने 1761 ई. में सिंधिया रियासत (ग्वालियर रियासत) का शासन सँभाला। किंतु 1761 से 1768 ई. तक 7 वर्षों तक उनका शासन उत्तराधिकार संघर्ष में बीता। 1768 के बाद उन्होंने अपनी शक्ति का विस्तार किया तथा आगे चलकर पेशवा की ओर से दिल्ली पर अधिकार किया, बाद में शाहआलम को पुनः दिल्ली की गद्दी पर बैठाया। माधवराव के काल में सिंधिया और होल्कर रियासतों के संबंध मैत्री से बिगड़ते-बिगड़ते दुश्मनी तक पहुँच गए थे। माधवराव सिंधिया 1794 में देहांतवास होने तक ग्वालियर राजवंश के शासक रहे।

दौलतराव सिंधिया (1794-1827 ई.)

महादजी सिंधिया के बाद उनके भाई तुकाजी सिंधिया के पोते दौलत राव ग्वालियर रियासत के उत्तराधिकारी थे। द्वितीय आंग्ल-मराठा युद्ध के दौरान 1803 ई. में ब्रिटिश और दौलतराव सिंधिया के मध्य सुरजी-अर्जनगाँव संधि हुई जिसके परिणामस्वरूप गंगा-जमुना दोआब, दिल्ली-आगरा क्षेत्र तथा बुंदेलखंड के कुछ हिस्से ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के अधिकार में आ गए।

5 नवंबर, 1817 को ग्वालियर की संधि हुई जिसके तहत सिंधिया ने पिंडारियों के दमन में ब्रिटिश की मदद करने की सहमति दी। 1818 ई. में संधिया अंग्रेज़ों के अधीन हुए और भारत की स्वतंत्रता तक एक रजवाड़े के रूप में बने रहे।

जीवाजीराव सिंधिया (1925-48)

जीवाजीराव सिंधिया महाराजा माधवराज सिंधिया द्वितीय (1886-1925) के पुत्र थे। 1925 में वे ग्वालियर रियासत के महाराजा बने। वर्ष 1941 में उन्होंने लेखा दिव्येश्वरी देवी से विवाह किया, जिन्हें बाद में राजमाता विजयाराजे सिंधिया के नाम से जाना जाने लगा। जीवाजीराव सिंधिया की चार पुत्रियाँ- पद्म राजे, उषा राजे, वसुंधरा राजे, यशोधरा राजे और एक पुत्र माधवराव सिंधिया-III थे। ये 15 अगस्त, 1947 के कुछ समय बाद तक ग्वालियर राज्य के महाराजा बने रहे। बाद में कई रियासतों को मिलाकर मध्य भारत प्रांत बनाया गया जो 15 जून, 1948 से प्रभावी हुआ। ये मध्य भारत प्रांत के राजप्रमुख (गवर्नर) या राज्यपाल 28 मई, 1948 को बनाए गए। इसी के साथ राजशाही को खत्म कर दिया गया। जीवाजी राव 31 अक्टूबर, 1956 तक मध्य भारत के राजप्रमुख रहे, तत्पश्चात् 1 नवंबर, 1956 को मध्य प्रदेश राज्य का गठन हुआ।

खंड

D

कला एवं संस्कृति

(मध्य प्रदेश के विशेष संदर्भ सहित)

36 भारत एवं मध्य प्रदेश की सांस्कृतिक विरासत
(Cultural Heritage of India & Madhya Pradesh)

संस्कृति तथा विरासत (Culture & Heritage)

भारतीय संस्कृति में भारतीय परंपरा का अन्य परंपराओं से समन्वय होता रहा है, जो एक साझी संस्कृति के निर्माण का कारण बनी है। उदाहरण के लिये उर्दू व खड़ी बोली पूरी तरह से समन्वित संस्कृति का परिणाम है, वहीं वर्तमान में तेज़ी से उभर रही 'हिंग्लिश' भी समन्वयवादी संस्कृति को दर्शाती है, जहाँ सांस्कृतिक विकास जैसी अवधारणाएँ सामने आती हैं।

सांस्कृतिक विकास को 'विविधता में एकता' की संज्ञा दी जाती है। यह एक ऐतिहासिक प्रक्रिया है, जिसमें हमारे पूर्वजों ने बहुत-सी बातें अपने पुरखों से सीखी हैं, समय के साथ-साथ अपने अनुभवों से उसमें और वृद्धि की तथा जो अनावश्यक था उसे छोड़ते गए। इस प्रकार संस्कृति एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तांतरित होती है। पूर्वजों से प्राप्त संस्कृति ही सांस्कृतिक विरासत कहलाती है। मानव ने जिन सांस्कृतिक परंपराओं को विरासत के रूप में अपनाया, उसे 'मानवता की विरासत' कहते हैं। एक राष्ट्र संस्कृति को विरासत के रूप में प्राप्त करता है, जिसे 'राष्ट्रीय सांस्कृतिक विरासत' कहते हैं।

सांस्कृतिक विरासत में वे सभी पक्ष तथा मूल्य सम्मिलित हैं, जो मनुष्यों को पीढ़ी-दर-पीढ़ी अपने पूर्वजों से प्राप्त हुए हैं। उन मूल्यों को सम्मान दिया जाता है और उन्हें अटूट निरंतरता से सुरक्षित किया जाता है, जिससे आने वाली पीढ़ियाँ इन पर गर्व करती हैं। विरासत के संप्रत्यय को स्पष्ट करने के लिये कुछ उदाहरण सहायक सिद्ध होंगे, जैसे- ताज़महल, स्वामी नारायण मंदिर, आगरा का लाल किला।

वास्तु संबंधित इन रचनाओं, इमारतों, शिल्पकृतियों के अलावा बौद्धिक उपलब्धियाँ, जैसे– दर्शन, ज्ञान के ग्रंथ, वैचारिक आविष्कार व खोज भी विरासत के हिस्से हैं। भारतीय संदर्भ में गणित, खगोल विद्या, ज्योतिष के क्षेत्र में बौधायन, आर्यभट्ट, और भास्कराचार्य का योगदान, भौतिक शास्त्र के क्षेत्र में कणाद और वराहमिहिर, रसायनशास्त्र के क्षेत्र में नागार्जुन, औषधि के क्षेत्र में सुश्रुत और चरक, योग के क्षेत्र में पतंजलि देश की सांस्कृतिक विरासत के अगाध भंडार हैं। संस्कृति परिवर्तनशील है, किंतु विरासत परिवर्तनशील नहीं है।

गहराई के विभिन्न स्तरों पर संस्कृति की अभिव्यक्ति: प्रतीक, नायक या अनुष्ठान सांस्कृतिक अभ्यास के मूर्त या दृश्य पहलू हैं, जबकि सांस्कृतिक प्रथाओं का असली अर्थ अमूर्त है। इसका पता केवल तब चलता है, जब प्रथाओं की व्याख्या अत्यंत सूक्ष्मता एवं गंभीरता से की जाती है।

यूनेस्को के अनुसार, संस्कृति को आमतौर पर कला का रूप माना जाता है।

संस्कृतियाँ अपने मूल अर्थ में भले ही अमूर्त हों, किंतु वे जब भी खुद को प्रकट करती हैं तो प्रतीक, नायक और अनुष्ठान आदि भी गढ़ती जाती हैं। इसलिये क्षेत्र विशेष की संस्कृतियों को हम उसी के अनुरूप पहचानने लगते हैं। उदाहरणस्वरूप, जब कभी भी हम राजस्थान की सांस्कृतिक विशेषताओं को देखते हैं तो प्रतीकात्मक रूप में वीरता और तलवार, नायक के रूप में महाराणा प्रताप, राणा सांगा या राणा कुंभा तथा अनुष्ठान में शस्त्र पूजा व लोक गीतों में इन नायकों का यशगान करना शामिल होता है। इस प्रकार, संपूर्ण राजपूताने की सांस्कृतिक विशेषताओं को हम अदम्य वीरता, साहस और बलिदान की पराकाष्ठा के रूप में पहचानते हैं। ठीक इसी प्रकार अन्य क्षेत्रों में भी संस्कृति को इन रूपकों के द्वारा पहचाना जाता है।

सभ्यता	संस्कृति
मनुष्य की प्राथमिक/प्रथम आवश्यकता है- भौतिक आवश्यकता यानी भोजन, वसन (वस्त्र) व निवसन (निवास) की तलाश।	बौद्धिक आवश्यकता मनुष्य की द्वितीयक आवश्यकता है। यानी मन में उठने वाली तमाम जिज्ञासाओं, प्रश्नों आदि का समाधान भी मनुष्य के लिये उतना ही ज़रूरी है, जितना भौतिक आवश्यकता का समाधान।
भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये मनुष्य प्रकृति का अन्वेषण, प्रकृति पर प्रयोग तथा प्रकृति में छिपे अपार संसाधनों का दोहन करता है।	बौद्धिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये मनुष्य प्रकृति का अनुकरण तथा प्रकृति में छिपे रहस्यों का लगातार उद्घाटन करने की कोशिश करता है।
यह प्रत्यक्ष रूप से उपयोगी क्रियाकलाप है।	यह परोक्ष रूप से उपयोगी क्रियाकलाप है।
सभ्यता के तमाम क्रियाकलापों, जैसे- भोजन, वस्त्र आदि का संबंध उपयोगिता से है।	संस्कृति के तमाम क्रियाकलापों, जैसे- कला, विज्ञान, नृत्य आदि का संबंध मूल्य से है तथा इसके तमाम क्रियाकलाप साध्य हैं।
सभ्यता की माप की जा सकती है।	संस्कृति को मापा या तौला नहीं जा सकता।
सभ्यता की उन्नति अल्पकाल में होती है।	संस्कृति विस्तृत सभ्यता की परिणति है।
सभ्यता का प्रसार तीव्र गति से होता है।	संस्कृति का प्रसार धीरे-धीरे, लेकिन लगातार होता है।
सभ्यता का आधार प्रतियोगिता है, जैसे दो आविष्कारों में प्रतियोगिता होती है।	सांस्कृतिक वस्तुएँ प्रतियोगिता रहित होती हैं, जैसे आध्यात्मिकता में कोई प्रतियोगिता नहीं होती।

37 भारत का एशियाई देशों से सांस्कृतिक संबंध
(Cultural Relation of India with Asian Countries)

हड़प्पा काल से ही भारत ने अपने एशियाई पड़ोसी देशों से संपर्क बनाए रखा तथा भारतीय लोगों ने सुदूर देशों की यात्राएँ कीं और वे जहाँ भी गए, वहाँ उन्होंने भारतीय संस्कृति की अमिट छाप छोड़ी। साथ ही ये लोग अन्य देशों से विचार, प्रभाव, रीति-रिवाज़ व परंपराओं को भी अपने साथ लेकर आए। इस प्रसार की सर्वाधिक विलक्षण बात यह थी कि इसका उद्देश्य किसी समाज या व्यक्ति को जीतना या डराना नहीं था बल्कि भारतीय आध्यात्मिक व सांस्कृतिक मूल्यों से दूसरे लोगों को परिचित कराना था। इस काम के लिये भारत से धर्म प्रचारक, शिक्षक, राजदूत और व्यापारी अन्य देशों में गए।

मौर्य सम्राट अशोक ने भारत के बाहर बौद्ध धर्म के प्रचार के लिये अथक प्रयास किये। उन्होंने अपने पुत्र महेंद्र और पुत्री संघमित्रा को बुद्ध के संदेशों के प्रचार कार्य के लिये श्रीलंका भेजा। कनिष्क के काल से ही कई भारतीय धर्म प्रचारक चीन, मध्य एशिया और अफगानिस्तान जाकर बौद्ध धर्म का उपदेश देते रहे। चीन से बौद्ध धर्म जापान व कोरिया में भी फैला। फाह्यान तथा ह्वेनसांग जैसे कई चीनी यात्री बौद्ध धर्म-ग्रंथों और सिद्धांतों की खोज में ही भारत आए। उसी समय बौद्धों की एक बस्ती चीन के तुन हुआंग में बस गई। इसी प्रकार भारतीयों ने रेशम उपजाने का कौशल चीन से सीखा और चीनियों ने भारतीयों से कपास पैदा करने का तरीका।

बौद्ध धर्म के प्रचार से भारत के आस-पास अन्य देशों से भी भारत के संबंध सुदृढ़ हुए। इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि भारतीय संस्कृति व सभ्यता का प्रसार विश्व के विभिन्न भागों में हुआ, एशिया में भारत के इन सांस्कृतिक संबंधों के विस्तार को हम अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से निम्न चार भागों में बाँटकर देख सकते हैं-

1. मध्य एशिया से सांस्कृतिक संबंध।
2. पूर्वी एशिया से सांस्कृतिक संबंध।
3. श्रीलंका और दक्षिण-पूर्व एशिया से सांस्कृतिक संबंध।
4. पश्चिम एशिया व अरब से सांस्कृतिक संबंध।

मध्य एशिया से सांस्कृतिक संबंध
(Cultural Relation with Central Asia)

- मध्य एशिया रूस, मंगोलिया, चीन, तिब्बत, अफगानिस्तान व भारत से घिरा हुआ क्षेत्र है।
- मध्य एशिया में बुद्ध की बहुत-सी मूर्तियाँ और कई विहार मिले हैं। इसमें **बेगराम** व **बामियान** के पुरावशेष विशेष उल्लेखनीय हैं।
- भारत से चीन व चीन से भारत आने-जाने वाले व्यापारियों ने जो मार्ग बनाया, वह आगे चलकर **'सिल्क रूट'** (रेशम-मार्ग) के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसे इस नाम से इसलिये बुलाया जाने लगा, क्योंकि इस मार्ग से चीन से रेशम का व्यापार किया जाता था।
- यहीं से होकर रेशम के साथ-साथ बहुमूल्य पत्थर, घोड़े तथा अन्य महत्त्वपूर्ण वस्तुओं का व्यापार हुआ करता था। इस व्यापार मार्ग से धर्म और दर्शन का, आस्था और विश्वास का, भाषा और साहित्य का तथा कला और संस्कृति का प्रसार हुआ,
- इस मार्ग से होकर जाने वाला सबसे अधिक प्रभावशाली तत्त्व बौद्ध धर्म था, जिसका सर्वाधिक प्रसार व प्रभाव हुआ, क्योंकि ज्ञान की खोज में और बौद्ध दर्शन का प्रचार करने के लिये अनेक चीनी और भारतीय विद्वान इस मार्ग से आवागमन करते रहे।
- भिक्षुओं, धर्माचार्यों, व्यापारियों और तीर्थयात्रियों के विश्राम-स्थल आगे चलकर बौद्ध शिक्षा के महत्त्वपूर्ण केंद्र बने।
- मध्य एशिया के देशों से प्राप्त प्राचीन स्तूपों, मंदिरों, मठों, मूर्तियों और चित्रों से यह प्रमाणित होता है कि इन स्थानों व भारत के मध्य संस्कृति का व्यापक आदान-प्रदान हुआ।
- खोतान राज्य (तकलामकान रेगिस्तान के दक्षिण-पश्चिम में स्थित एक चीनी प्रांत) रेशमी कपड़ा उद्योग, नृत्य और संगीत, साहित्यिक और व्यापारिक गतिविधियों और सोने के व्यापार के लिये प्रसिद्ध एक महत्त्वपूर्ण स्थान था।
- इतिहास में भारत और खोतान के बीच संबंध का एक प्रमाण यह है कि भिक्षुओं और शिक्षकों का आवागमन निरंतर इन स्थानों पर चलता रहा।
- खोतान से प्राप्त पहली शताब्दी के सिक्कों पर एक ओर चीनी भाषा में लिखा हुआ है तो दूसरी ओर खरोष्ठी लिपि और प्राकृत भाषा में।
- खोतान से रेत के अंदर दबे मठों की खुदाई करने पर बड़ी संख्या में संस्कृत भाषा में लिखित बौद्ध दर्शन की पांडुलिपियाँ, उनके लिप्यांतर और अनुवाद उपलब्ध हुए हैं।

पूर्वी एशिया से सांस्कृतिक संबंध
(Cultural Relation with East Asia)

तिब्बत

अधिकांश तिब्बती बौद्ध हैं। विक्रमशिला विश्वविद्यालय के प्रधान आचार्य **अतीश,** जिन्हें **दीपंकर श्रीज्ञान** के नाम से भी जाना जाता है। वे ग्यारहवीं शताब्दी में तिब्बत गए और उन्होंने वहाँ बौद्ध धर्म की सशक्त नींव डाली। माना जाता है कि तिब्बत के राजा नरदेव ने अपने एक मंत्री थोन्मी सम्भोट के साथ सोलह श्रेष्ठ विद्वानों को मगध भेजा। इन विद्वानों ने भारतीय शिक्षकों से ज्ञान प्राप्त किया। कहा जाता है कि थोन्मी सम्भोट ने भारतीय लिपि के आधार पर तिब्बत के लिये एक नई लिपि का आविष्कार किया। तिब्बत में आज भी इस लिपि का प्रयोग किया जाता है। थोन्मी सम्भोट द्वारा लिखित व्याकरण पाणिनि द्वारा लिखे संस्कृत

38

भारतीय कला प्रारूप
(Indian Art Forms)

कला सिर्फ एक शब्द नहीं है। इसकी अर्थ-व्यापकता के अनेक क्षेत्र हैं। भाषा, संस्कृति, इतिहास, साहित्य और समाज में यह अनेक रूपों में स्थापित है। इसका प्रयोग विभिन्न अर्थों में किया जाता रहा है। जहाँ संस्कृत में यह शब्द अलंकरण और शोभा से संबंधित है, वहीं इतिहास व संस्कृति में इसे सौंदर्य अथवा आनंद से परिभाषित किया गया है, साथ ही प्राचीन भारत में इसे साहित्य और संगीत के समकक्ष माना गया है।

'कला' शब्द की व्युत्पत्ति 'संस्कृत' की 'कल' धातु से हुई है, जिसका अर्थ 'संख्यान' से है। शब्द संख्यान का आशय है- 'स्पष्ट वाणी में प्रकट करना'। यानी 'कला' शब्द का आशय है- जिसे स्पष्ट रूप में और व्यवस्थित रूप से अभिव्यक्त किया जा सके। 'कला' शब्द के अंग्रेज़ी अनुवाद 'आर्ट' का आशय भी कौशल या निपुणता से है। यानी कला सौंदर्यशास्त्रीय सृजनात्मकता का प्रतीक है। प्रवृत्तियों के आधार पर तो कला के अनेक रूप हैं, किंतु अध्ययन के लिहाज़ से इसका सामान्य वर्गीकरण निम्नलिखित है-

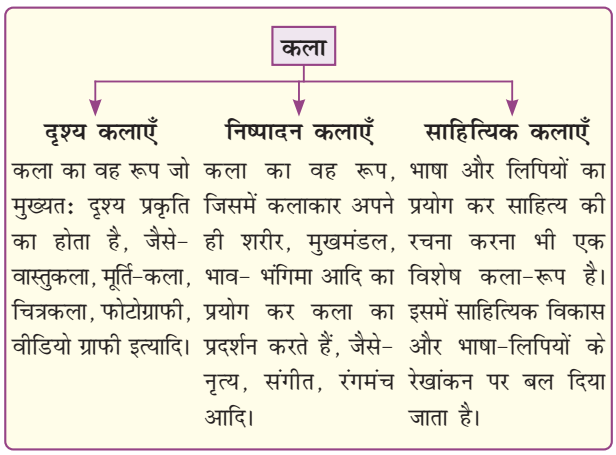

वास्तुकला/स्थापत्यकला (Architecture)

'वास्तु' शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा के शब्द 'वस्' से हुई है, जिसका आशय बसने या रहने से है। 'स्थापत्य' शब्द वास्तु का पर्यायवाची है। कला में दोनों का प्रयोग प्राय: समान अर्थ में किया गया है। कला की भाँति 'वास्तु या स्थापत्य कला' के उद्भव एवं विकास का इतिहास भी उतना ही प्राचीन है, जितना कि मानव-सभ्यता का। आदिमानव के आश्रय-स्थल प्राकृतिक गुफाएँ, शैलाश्रय तथा वृक्ष हुआ करते थे। यूरोपीय महाद्वीप के अंतर्गत स्पेन तथा फ्राँस के समीपवर्ती प्रदेश में ऐसी अनेक गुफाएँ मिली हैं, जिनमें आदिमानव के निवास करने के स्पष्ट प्रमाण मौजूद हैं। भारत में भी विभिन्न शैलाश्रयों एवं प्राकृतिक गुफाओं में मानव के रहने के साक्ष्य मिले हैं। मानव सभ्यता ने जैसे-जैसे प्रगति की, वैसे-वैसे वास्तुकला व स्थापत्य कला के रूपों में भी परिवर्तन आता गया। भारत में प्रागैतिहासिक काल से लेकर 12वीं सदी तक स्थापत्य कला के विकास में निरंतरता दिखती है। यद्यपि भारतीय कला पर विदेशी प्रभाव प्रारंभ से ही बार-बार पड़ता रहा है, तथापि कलाओं का भारतीय स्वरूप बरकरार रहा। अत: 13वीं सदी से लेकर ब्रिटिश काल के बीच भी भारतीय स्थापत्य कला ने एक नई ऊँचाई ग्रहण की।

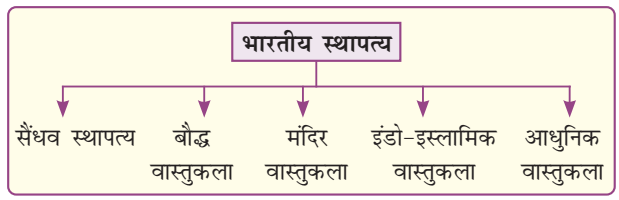

सिंधुकालीन स्थापत्य *(Indus Architecture)*

भारत में सर्वप्रथम हड़प्पा सभ्यता में सुव्यवस्थित स्थापत्य निर्माण (नगरों का प्रादुर्भाव) के साक्ष्य प्राप्त होते हैं। हड़प्पा सभ्यता भारतीय संस्कृति की लंबी एवं वैविध्यपूर्ण कहानी का प्रारंभिक बिंदु है। इसका कालखंड लगभग 3000 ई. पू. से 2000 ई. पू. के बीच है। भारत के उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र में विकसित इस सभ्यता का क्षेत्रफल 1.3 मिलियन वर्ग किलोमीटर है। भारतीय वास्तुकला के प्राचीनतम नमूने हड़प्पा, मोहनजोदड़ो, रोपड़, कालीबंगा, लोथल और रंगपुर आदि से पाए गए हैं।

नगर एक ऐसी सघन बसावट होता है, जिसकी जीविका प्रधानत: उद्योग-धंधों तथा व्यापार-वाणिज्य पर निर्भर करती है। हड़प्पा सभ्यता के नगर एकाएक विकसित नहीं हुए, बल्कि यह विकास की स्वाभाविक प्रक्रिया के अनुरूप विकसित हुए हैं। हड़प्पा-पूर्व की ग्रामीण संस्कृतियों (यथा-आमरी, कालीबंगा, प्राक्-हड़प्पा) को नगरीय सभ्यता बनने में हज़ार वर्ष से ऊपर लगे। अत: हड़प्पा सभ्यता के स्थापत्य की प्रमुख विशेषता इसकी नगर-निर्माण योजना है।

नगर स्थापत्य योजना

हड़प्पा और मोहनजोदड़ो स्थल सैंधव सभ्यता के नगर-निर्माण योजना का आदर्श साक्ष्य देते हैं। हड़प्पा सभ्यता के सभी नगरों के स्थापत्य में स्थानीय क्षेत्रीय प्रभेद के साथ अधिकांशत: समरूपता के दर्शन ही होते हैं। सैंधव स्थापत्य की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं-

- हड़प्पा सभ्यता के समस्त नगर 'ग्रिड प्लानिंग' के तहत बसाए गए थे, यानी आयताकार खंड में विभाजित नगर, जहाँ सड़कें एक-दूसरे को समकोण पर काटती थीं।
- हड़प्पा सभ्यता के नगरीय क्षेत्र दो हिस्सों में बँटे थे- दुर्ग-गढ़ी क्षेत्र या पश्चिमी टीला तथा दूसरा पूर्वी टीला।

39 मध्य प्रदेश : जनजातियाँ एवं उनकी संस्कृति
(Madhya Pradesh : Tribes and their Culture)

मध्य प्रदेश की एक पहचान उसकी अनूठी जनजातीय संस्कृति है। जनजातीय लोगों को आदिवासी भी कहा जाता है। ये दोनों शब्द इन जातियों की प्राचीनता का बोध कराते हैं। भारतीय संविधान की अनुसूची में अंकित होने के कारण ही आदिवासी समुदायों को अनुसूचित जनजातियाँ कहा जाता है।

जनजाति समुदाय के लोग एक निश्चित क्षेत्र में निवास करते हैं, एक विशिष्ट प्रकार की भाषा या बोली बोलते हैं, आदिकालीन धर्म, रीति और परंपरा को मानते हैं तथा आदिकालीन सामाजिक व आर्थिक व्यवस्था में जीवनयापन करते हैं। इन समुदायों की विशिष्ट प्रस्थिति को ध्यान में रखते हुए संविधान के अनुच्छेद 342 में इन्हें 'अनुसूचित जनजाति' के रूप में अधिसूचित किया गया है।

- भारतीय संविधान के अनुच्छेद 341 में सूचीबद्ध जातियाँ अनुसूचित जातियाँ कहलाती हैं।
- जनगणना 2011 के अनुसार मध्य प्रदेश में अनुसूचित जाति (SC) की जनसंख्या राज्य की कुल जनसंख्या का 15.6% है।
- मध्य प्रदेश में जनसंख्या की दृष्टि से सर्वाधिक अनुसूचित जाति इंदौर में तथा न्यूनतम अनुसूचित जाति झाबुआ ज़िले में हैं।
- प्रतिशत के आधार पर प्रदेश में सर्वाधिक अनुसूचित जाति उज्जैन में तथा न्यूनतम झाबुआ में हैं।
- राज्य की सबसे बड़ी अनुसूचित जाति चमार है। अन्य जातियों में खटिक, भंगी, बलाई, बसोड़, बेड़िया आदि हैं।
- बेड़िया अनुसूचित जाति सागर ज़िले में रहती है जो कि वंशानुगत रूप से वेश्यावृत्ति के पेशे से जुड़ी है।
- अनुसूचित जनजाति (ST) के संबंध में संविधान के अनुच्छेद 342 में प्रावधान किया गया है।
- जनगणना 2011 के अनुसार अनुसूचित जनजाति की आबादी, देश की कुल आबादी का 8.14% है तथा मध्य प्रदेश में इनकी आबादी प्रदेश की कुल आबादी का 21.1% है। मध्य प्रदेश में अनुसूचित जनजातियों (ST) की जनसंख्या पूरे भारत में सर्वाधिक है।
- प्रदेश में सबसे अधिक अनुसूचित जनजाति के लोग जनसंख्या के आधार पर धार में तथा सबसे कम भिंड में हैं।
- प्रतिशत की दृष्टि से सर्वाधिक अनुसूचित जनजाति अलीराजपुर (89%) तथा सबसे कम भिंड (0.4%) में हैं।
- मध्य प्रदेश में 3 सबसे बड़ी जनजातियाँ हैं- भील, गोंड तथा कोल।
- केंद्र सरकार ने राज्य की मान्यता प्राप्त कुल 46 जनजातियों में से 3 जनजातियों- बैगा, सहरिया और भारिया को विशेष पिछड़ी जनजाति घोषित किया है।
- विशेष पिछड़ी जनजाति को भारत सरकार द्वारा मान्यता प्रदान की जाती है, जिसका आधार है- कृषि में पूर्व प्रौद्योगिकीय स्तर, साक्षरता का न्यूनतम स्तर, अत्यंत पिछड़े एवं दूरदराज़ क्षेत्रों में निवास करना तथा स्थिर या घटती जनसंख्या।
- मध्य प्रदेश में कुल जनजातियों में भीलों की संख्या का प्रतिशत सर्वाधिक है। गोंडों की आबादी दूसरे स्थान पर है।

राष्ट्रीय अनुसूचित जाति एवं जनजाति आयोग

अनुसूचित जाति एवं जनजाति के हितों की अभिवृद्धि के लिये किये गए संवैधानिक प्रावधानों एवं अन्य विधिक उपबंधों के संरक्षण हेतु संविधान के अनुच्छेद 338 के अंतर्गत एक विशेष अधिकारी की नियुक्ति का प्रावधान किया गया। संसद सदस्यों द्वारा की जा रही निरंतर मांग के परिप्रेक्ष्य में इसे 1978 में बहुसदस्यीय बना दिया गया। 1987 में इसका नाम अनुसूचित जाति एवं जनजाति आयोग से बदल कर राष्ट्रीय अनुसूचित जाति एवं जनजाति आयोग कर दिया गया। 89वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2003 के माध्यम से राष्ट्रीय अनुसूचित जाति एवं जनजाति आयोग को दो भागों में बाँट दिया गया तथा उसमें एक नया अनुच्छेद 338(क) जोड़कर राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग तथा अनुच्छेद 338 के तहत राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग का प्रावधान किया गया। यह अधिनियम 2004 से प्रभावी हुआ।

प्रमुख जनजातियाँ एवं उनकी संस्कृति
(Major Tribes and their Culture)

भील

यह मध्य प्रदेश की सबसे बड़ी जनजाति है। भील मध्य प्रदेश की प्राचीनतम जनजातियों में से एक मानी जाती है। पश्चिमी मध्य प्रदेश के झाबुआ, अलीराजपुर, धार, खरगोन, बड़वानी, रतलाम आदि ज़िलों में इनकी आबादी अधिक है। भील शब्द की उत्पत्ति तमिल भाषा के 'विल्लुवर' शब्द से हुई है, जिसका अर्थ होता है- धनुष। चूँकि भील लोग तीर-धनुष का उपयोग करते हैं, इसलिये इन्हें भील कहा जाता है। 'कथासरित सागर' में गुंधपा ने 'भील' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग किया था। यह जनजाति मध्य प्रदेश के अलावा महाराष्ट्र, राजस्थान तथा गुजरात में पाई जाती है। यह जनजाति मुख्यत: भीली भाषा बोलती है जो गुजराती, राजस्थानी तथा मराठी का मिश्रित रूप है।

उप-जातियाँ: बरेला, रथियास, भिलाला, पटलिया, बैगास

पर्व: भगोरिया, गल, जातरा, चलावणी

नृत्य: डोहा, भगोरिया, घूमर, बड़वा, गौरी

40 भारत एवं मध्य प्रदेश का साहित्य एवं साहित्यकार
(Literature and Litterateurs of India & Madhya Pradesh)

मानव जीवन के विकास से ही लिपियों का आविष्कार भी जुड़ा है। किसी भी भाषा की लिखित अभिव्यक्ति और साहित्य निरूपण के माध्यम को लिपियों के नाम से जाना जाता है। प्राचीन काल से ही मनुष्य अपनी संस्कृति, समाज, साहित्य और जीवन शैली के विभिन्न पहलुओं को लिपियों में निरूपित करता रहा है। प्रत्येक संस्कृति से संबद्ध लोगों ने स्वयं अपनी भाषा का विकास किया तथा इसके द्वारा अपनी समृद्ध साहित्यिक विरासत को सहेजने और संगृहीत करने का प्रयास किया।

आगे चलकर किसी समाज के सांस्कृतिक विकास के अध्ययन हेतु इन्हीं साहित्यिक विरासतों का उपयोग किया जाने लगा। इसे दूसरे रूप में कहें तो किसी विशेष संस्कृति एवं उसकी परंपराओं को जानने हेतु उस समाज की भाषाओं के क्रमिक विकास एवं साहित्यिक विधाओं का अध्ययन ज़रूरी हो जाता है।

प्राचीनकाल की साहित्यिक प्रवृत्तियाँ (Literary Tendencies of Ancient Times)

संस्कृत साहित्य *(Sanskrit Literature)*

संस्कृत हिंद-यूरोपीय भाषा परिवार की हिंद-ईरानी शाखा की हिंद-आर्य उप-शाखा में शामिल है। संस्कृत अधिकांश भारतीय भाषाओं की जननी है अर्थात् यह देश की प्राचीनतम भाषाओं में से एक है। पाणिनी द्वारा लिखित 'अष्टाध्यायी' संस्कृत भाषा के व्याकरण का प्राचीनतम और आधार ग्रंथ है।

प्राचीन काल में हिंदू धर्म से संबंधित लगभग सभी धर्म ग्रंथ इसी भाषा में लिखे गए, साथ ही हिंदुओं के धार्मिक कर्मकांडों से जुड़े सभी मंत्रों के संस्कृत भाषा में होने तथा इस रूप में पुरोहितों की भाषा होने के कारण इसे समाज में उच्च स्थिति प्राप्त थी। अगर इस भाषा के दूसरी भाषाओं पर प्रभाव की बात करें तो हमें हिंदी, बांग्ला, मराठी, सिंधी, पंजाबी, तमिल, तेलुगू आदि भाषाओं पर संस्कृत का असर दिखाई देता है।

वैदिक साहित्य

वैदिक साहित्य के सबसे प्राचीन ग्रंथ वेद हैं। वेदों से आर्यों के सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं राजनीतिक जीवन के संबंध में जानकारी मिलती है। वेद चार हैं- ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद।

ऋग्वेद की रचना 1500 ई. पू. से 1000 ई. पू. के मध्य की गई थी। इसमें 10 मंडल एवं 1028 सूक्त हैं। ऋग्वेद में उल्लिखित मंत्रों को यज्ञ के अवसर पर होतृ नामक पुरोहित द्वारा उच्चारित किया जाता था। ऋग्वेद में लिखे गए अधिकांश सूक्त मानव जीवन के उच्चतम मूल्यों से संबंधित हैं तथा इसमें प्रकृति का बड़ा मनोरम चित्रण किया गया है।

वहीं यजुर्वेद में धार्मिक कर्मकांड एवं इससे संबंधित मंत्रों का वर्णन किया गया है। यजुर्वेद के मंत्रों को उच्चारित करने वाले पुरोहित को अध्वर्यु कहा जाता था। कर्मकांड से संबंधित जानकारी उपलब्ध कराने के कारण यह चारों वेदों में सर्वाधिक लोकप्रिय है। यह वेद गद्य एवं पद्य दोनों में रचित है, जिसमें तत्कालीन समय की सामाजिक एवं धार्मिक स्थिति का वर्णन मिलता है।

सामवेद में ऋग्वैदिककालीन मंत्रों के संगीतमय उच्चारण करने की विधि का वर्णन है, इसलिये इसे 'भारतीय संगीत का जनक' भी कहा जाता है। वहीं अथर्ववेद मानव समाज की शांति एवं समृद्धि से संबंधित है। इसमें मनुष्य के दैनिक जीवन की चर्चा की गई है तथा 99 रोगों के उपचार की विधि का वर्णन है। अथर्ववेद को इस रूप में भी प्रसिद्धि प्राप्त है कि यह भारतीय सभ्यता के प्रारंभिक काल की धार्मिक वृत्ति का प्रतिनिधित्व करता है।

इन चारों वेदों के पश्चात् ब्राह्मण ग्रंथों का स्थान आता है। ब्राह्मण ग्रंथों में वैदिक कर्मकांड की विस्तृत व्याख्या, निर्देशन एवं यज्ञ विधान का वर्णन किया गया है। चारों वेदों के अपने ब्राह्मण ग्रंथ हैं। प्राचीन इतिहास के अध्ययन के साधन के तौर पर ऋग्वेद के पश्चात् ब्राह्मण ग्रंथों का स्थान आता है। इसमें तत्कालीन समय के सामाजिक, राजनीतिक एवं धार्मिक जीवन के विषय में जानकारी दी गई है।

आरण्यक, ब्राह्मण ग्रंथों के परिशिष्ट भाग हैं, जिनमें दार्शनिक एवं रहस्यात्मक विषयों के साथ-साथ लोगों के सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक जीवन के विषय में विस्तृत चर्चा की गई है।

उपनिषद्

उपनिषद्, आरण्यकों के पूरक एवं भारतीय दर्शन के प्रमुख स्रोत के रूप में प्रसिद्ध हैं। ये हमारी साहित्यिक विरासत के दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण हैं। इनमें विश्व की उत्पत्ति, जीवन-मृत्यु, भौतिक व आध्यात्मिक जगत, ज्ञान के स्वरूप आदि के संबंध में चर्चा की गई है। उपनिषदों का केंद्रीभूत सिद्धांत 'ब्रह्म सत्य जगत मिथ्या है।' अर्थात् ब्रह्म ही आत्मा है और वही सत्य। इसके अलावा सब मिथ्या है। भारत के राष्ट्रीय प्रतीक, सारनाथ के 'सिंह स्तंभ' के नीचे 'सत्यमेव जयते' की उक्ति, मुण्डकोपनिषद् से ली गई है। उपनिषदों की कुल संख्या 108 है, किंतु प्रामाणिक उपनिषद् 12 ही हैं जिनमें ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुंडक, मांडूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छांदोग्य, कौषितकि आदि प्रमुख हैं।

वेदांग

वेदांगों की संख्या 6 है- शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद एवं ज्योतिष। ये गद्य के रूप में लिखे गए हैं। इनमें शिक्षा, वैदिक स्वरों के शुद्ध उच्चारण से; कल्प, विधि एवं नियम से; व्याकरण, नाम, धातु की रचना, उपसर्ग एवं प्रत्यय के प्रयोग से; निरुक्त, भाषा-विज्ञान से तथा ज्योतिष, ज्योतिषशास्त्र के विकास से संबंधित हैं।

41

मध्य प्रदेश : प्रसिद्ध व्यक्तित्व
(Madhya Pradesh : Famous Perasonalities)

मध्यप्रदेश के प्रमुख व्यक्तित्व
(Major Personalities of Madhya Pradesh)

प्राचीनकाल से लेकर आधुनिक काल तक मध्यप्रदेश ऐसी महान विभूतियों की जन्म स्थली रहा है, जिनका भारत के ऐतिहासिक, सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में अमूल्य योगदान रहा है। इन प्रमुख व्यक्तियों का वर्णन निम्न प्रकार से किया जा सकता है-

ऐतिहासिक व्यक्तित्व
(Historical Personalities)

तानसेन

संगीत सम्राट तानसेन भारत के एक महान गायक एवं मुगलकाल के प्रमुख संगीतकार थे। तानसेन के प्रारंभिक जीवन से संबंधित जानकारियों में काफी विवाद है। मध्यकाल में 16वीं शताब्दी की शुरुआत में उनका जन्म मध्य प्रदेश के ग्वालियर जिले के बेहट गाँव में हुआ था। उनका वास्तविक नाम **रामतनु पांडेय** था। अकबर के दरबार में आने से पहले तानसेन रीवा के राजा रामचंद्र के दरबार की शोभा बढ़ाते थे। मुगल बादशाह **अकबर** ने उन्हें अपने **नवरत्नों** में शामिल किया। उन्होंने संगीत के कई रागों की रचना की जिनमें **मियाँ की मल्हार, ध्रुपद गायन, दीप राग, मेघ मल्हार** अधिक प्रसिद्ध है। तानसेन ने **संगीतसार, रागमाला, श्रीगणेश स्तोत्र** नामक तीन संगीत ग्रंथों की रचना भी की। 1586 ई. (कुछ स्रोतों के अनुसार 1589 ई.) में तानसेन की मृत्यु हो गई। उनकी समाधि उनकी इच्छानुसार उनके गुरु मुहम्मद गौस खाँ की समाधि के पास ग्वालियर (मध्य प्रदेश) में स्थापित की गई।

अवंतिबाई लोधी

अवंतिबाई लोधी का जन्म अगस्त 1831 में मध्य प्रदेश के ज़िला **सिवनी** के ग्राम मनकेहणी में ज़मींदार श्री जुझार सिंह के परिवार में हुआ था। 1849 ई. में उनका विवाह रामगढ़ रियासत के राजकुमार विक्रमजीत सिंह के साथ हुआ। अवंतिबाई बाल्यकाल से ही साहसी एवं सुंदर थीं। तलवार चलाना और घुड़सवारी करना उनके प्रमुख शौक थे। 1850 ई. में विक्रमजीत सिंह रामगढ़ रियासत के राजा बने। यह रियासत वर्तमान में मध्य प्रदेश के मंडला ज़िले में स्थित है। अवंतिबाई ने दो पुत्रों को जन्म दिया। इसके कुछ समय उपरांत अवंतिबाई के पति विक्रमजीत सिंह अर्द्ध-विक्षिप्त हो गए और उनकी मृत्यु हो गई। अत: राज्य का सारा भार रानी अवंतिबाई के कंधों पर आ गया। उन्होंने इस उत्तरदायित्व को अच्छे ढंग से निभाया। चूँकि इस समय भारत ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन था और तत्कालीन गवर्नर जनरल लॉर्ड डलहौजी अपनी **व्यपगत नीति** (Doctrine of lapse) के तहत कई देशी रियासतों को ब्रिटिश साम्राज्य में शामिल कर रहा था। यह खतरा रामगढ़ रियासत पर भी मँडरा रहा था। इसीलिये अवंतिबाई ने अंग्रेज़ी सरकार के विरुद्ध लोगों को संगठित किया तथा सेना को मज़बूत करने का कार्य प्रारंभ कर दिया।

ब्रिटिश शासन के विरुद्ध जब 1857 ई. का विद्रोह हुआ तो रानी अवंतिबाई भी इस विद्रोह में शामिल हो गईं। उन्होंने मंडला के डिप्टी कमिश्नर को मंडला से भगा दिया। इसका बदला लेने के लिये अंग्रेज़ों की एक बड़ी सेना भेजी गई। मार्च 1858 में देवहारगढ़ के जंगल में रानी अवंतिबाई और अंग्रेज़ी सेना के विरुद्ध भयंकर युद्ध हुआ, जिसमें अंग्रेज़ी सेना ने रानी को चारों ओर से घेर लिया। रानी अवंतिबाई वीरतापूर्वक लड़ीं, उनके सैकड़ों सैनिक मारे गए। अपने को चारों ओर से घिरता देख अपनी पूर्वजा रानी दुर्गावती का अनुसरण करते हुए उन्होंने शत्रुओं द्वारा गिरफ्तार होने से श्रेयस्कर अपना आत्म-बलिदान कर देना समझा और स्वयं तलवार को अपने पेट में घोंपकर शहीद हो गईं।

कहा जाता है कि रानी अवंतिबाई 1857 ई. के विद्रोह के प्रमुख नेताओं में अत्यधिक योग्य थीं, उनके बलिदान, त्याग एवं वीरतापूर्वक लड़ी गई लड़ाई ने उन्हें झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई के समकक्ष ला दिया। उनकी इसी वीरता के कारण मध्य प्रदेश की जनता उन्हें आज भी सम्मान से याद करती है।

अहिल्याबाई होल्कर

अहिल्याबाई होल्कर एक महान शासिका तथा **मालवा प्रांत** की महारानी थीं। आम जनता उन्हें राजमाता **अहिल्यादेवी होल्कर** के नाम से भी जानती थी। अहिल्याबाई का जन्म महाराष्ट्र के अहमदनगर के ग्राम चौंडी में मई 1725 में हुआ था। उनके पिता का नाम मानकोजी राव शिंदे था जो गाँव के पाटिल थे। उनका बचपन बहुत ही साधारण था एवं उनके पिता ने उन्हें शिक्षित किया था। युवावस्था में उनके चरित्र और सरलता से प्रभावित होकर मल्हार राव होल्कर ने अपने बेटे खंडेराव होल्कर से उनकी शादी करवा दी। इस प्रकार अहिल्याबाई मराठा राजघराने में पहुँच गईं। **1754 ई. में कुंभेर की लड़ाई** में खंडेराव की मृत्यु हो गई जिसके बाद मल्हार राव होल्कर के कहने पर उन्होंने सैन्य एवं प्रशासनिक मामले में प्रभावी रुचि दिखाई तथा मल्हार राव के निधन के बाद 1766 ई. में अहिल्याबाई मालवा की शासिका बन गईं।

अहिल्याबाई ने कई युद्धों का नेतृत्व किया था, वह एक साहसी योद्धा थीं। बेहतरीन तीरंदाज़ व एक कुशल प्रशासक भी थीं। उन्होंने अपनी राजधानी को महेश्वर स्थानांतरित कर दिया। एक महिला होने के नाते उन्होंने विधवा महिलाओं द्वारा अपने पति की संपत्ति को हासिल

42

विविध
(Miscellaneous)

भारतीय सिनेमा (Indian Cinema)

मानव समाज ने अपने विकास क्रम में अभिव्यक्ति के विभिन्न माध्यमों का विकास किया है। बोलने–लिखने से लेकर चित्र बनाने के साथ चलचित्र (सिनेमा) विचारों को प्रकट करने का सशक्त माध्यम के रूप में विकसित हुआ, साथ ही कला के विभिन्न रूपों, यथा- चित्रकला, मूर्तिकला, स्थापत्यकला इत्यादि वे साधन बने जिसने अमूर्त विचारों को मूर्त रूप प्रदान किया। चूँकि मानव के विचार तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों से प्रभावित होते हैं, इसलिये स्वाभाविक रूप से उनकी अभिव्यक्ति जिस भी माध्यम से संपादित होती है, उस पर तत्कालीन समय की छाप होती है। यही वजह है कि हर युग में कला की अपनी एक विशेषता होती है, जो न केवल तत्कालीन समाज का चित्रण करती है, बल्कि उसका वितान फंतासियों से लेकर एक आदर्श समाज की कल्पना तक विस्तृत होता है। सिनेमा भी इस नियम का अपवाद नहीं है अर्थात् यह भी अपने समय की विशेषताओं से युक्त होता है। साथ ही सिनेमा मनोरंजन का भी एक साधन है। किसी समय के समाज के अध्ययन में यह तत्त्व काफी महत्त्वपूर्ण होता है कि उस समय मनोरंजन के कौन-कौन से साधन प्रचलित थे तथा उस समय मनोरंजन का स्वरूप कैसा था? मूक रूप में शुरू हुआ सिनेमा जल्द ही दृश्य-श्रव्य में परिणत हो गया तथा ज्यों-ज्यों तकनीक का विकास होता गया, सिनेमा का स्वरूप और भी उन्नत होता चला गया।

सिनेमा का इतिहास *(History of Cinema)*

थॉमस एडिसन ने अपने सहयोगी विलियम कैनेडी के साथ मिलकर पहले मोशन कैमरे 'कीनेटोग्राफ' का आविष्कार किया। यह काफी वज़नी था तथा इसका उपयोग करना अत्यंत ही कठिन था। आगे चलकर फ्राँस में 'लुमियर ब्रदर्स' ने अपेक्षाकृत अधिक उन्नत तकनीक से युक्त कैमरा बनाया जिसे 'सिनेमेटोग्राफ' कहा गया। यह उपयोग की दृष्टि से अधिक बेहतर आविष्कार था। इस प्रकार लुमियर ब्रदर्स ने 1895 में दुनिया की पहली फिल्म का प्रदर्शन पेरिस में किया। भारत में भी फिल्म का पहला प्रदर्शन लुमियर ब्रदर्स द्वारा 1896 में मुंबई के वाटसन होटल में किया गया। यह दिलचस्प है कि भारत में सिनेमा का प्रवेश प्रथम 6 माह के अंदर ही हो गया। हालाँकि इसके बाद लगभग 15 वर्षों तक किसी स्वदेशी प्रोडक्शन हाउस द्वारा फिल्मों का निर्माण न हो सका।

हिन्दी सिनेमा का विकास *(Development of Indian Cinema)*

स्वतंत्रता के बाद भारतीय सिनेमा के स्वरूप में भी बदलाव आया तथा विचार कहीं अधिक आज़ादी से सिनेमा के माध्यम से अभिव्यक्त होने लगे। हालाँकि फिल्मों को सेंसर करने की व्यवस्था बनी रही। 'केंद्रीय फिल्म प्रमाणन बोर्ड' (Central Board of Film Certification – CBFC), जो सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय के अधीन कार्यरत एक सांविधिक निकाय है, फिल्मों के सार्वजनिक प्रदर्शन के पहले उसे प्रमाण-पत्र जारी करता है। इसका गठन 'सिनेमेटोग्राफ एक्ट, 1952' के तहत किया गया है।

1950-60 के दशक को हिन्दी सिनेमा का 'स्वर्णिम युग' कहा जाता है। महबूब खान, बिमल रॉय, गुरुदत्त, राजकपूर जैसे फिल्मकारों ने अपने समय की फिल्मों का वितान काफी विस्तृत किया। दरअसल, वह दौर काफी उथल-पुथल भरा था। इनमें से अधिकांश फिल्मकारों ने वह दौर देखा था जब भारत औपनिवेशिक सत्ता के विरुद्ध संघर्ष कर रहा था तो दूसरी तरफ फासीवाद के विरुद्ध वैश्विक संघर्ष छिड़ा हुआ था। परतंत्र भारत की दयनीय सामाजिक-आर्थिक दशा के बाद जब भारत आज़ाद हुआ तो स्वाभाविक रूप से परिवर्तन की एक व्यापक आस जगी। तत्कालीन सिनेमा में एक तरफ स्वप्न है तो दूसरी तरफ उस स्वप्न व यथार्थ के अंतर्विरोध का चित्रण भी।

उस दौर में बनी कुछ शानदार फिल्मों में गुरुदत्त की 'प्यासा' व 'कागज़ के फूल', राजकपूर की 'आवारा' तथा 'श्री 420', बिमल रॉय की 'दो बीघा ज़मीन', महबूब खान की 'मदर इंडिया' इत्यादि हैं। इसके अतिरिक्त भी उस दौर में कई फिल्में बनीं जिनमें पर्याप्त विविधता देखने को मिलती है। 'आवारा' फिल्म शहरी जीवन के विभिन्न पहलुओं को उद्घाटित करती है तो 'दो बीघा ज़मीन' उस किसान की दारुण व्यथा को व्यक्त करती है जो शोषणकारी ज़मींदार से अपनी ज़मीन को बचाना चाहता है। 'बूट पॉलिश' जहाँ बाल संघर्ष को दिखाती है तो वहीं 'दो आँखें बारह हाथ' उस आदर्श पुलिस ऑफिसर का चित्रण करती है जो सफलतापूर्वक छह अपराधियों का पुनर्वास कराता है। इसके अलावा उस दौर में ही 'मदर इंडिया' जैसी फिल्म भी बनी जिसने सफलता के नए कीर्तिमान स्थापित किये तथा ऑस्कर के लिये नामित भी हुई। बिमल रॉय की 'सुजाता' में छुआछूत के दर्द को उकेरा गया। कुल मिलाकर उस दौर में निर्मित फिल्मों में पर्याप्त विविधता थी और सामाजिक मुद्दों से लेकर प्रेम तथा कॉमेडी– प्रधान फिल्में भी बनीं। 1960 के दशक में बनने वाली फिल्मों में संगीत एक महत्त्वपूर्ण अवयव के रूप में स्थापित हो चुका था। लगभग हर फिल्म का अपना एक अलग प्रकार का संगीत होता था। यह वही दौर था जब भारत चीन व पाकिस्तान से युद्ध लड़ रहा था। अतः स्वाभाविक तौर पर राष्ट्रवादी भावना से युक्त कुछ फिल्में भी बनीं।

1970 के दशक में जब भारतीय राजनीति में वामपंथ का प्रभाव मज़बूत हो रहा था तथा सामूहिक प्रतिरोध की भावना बलवती हो रही थी तो इसका प्रभाव सिनेमा पर भी पड़ा। उस दौर के नायकों में 'एंग्री यंग मैन' की छवि आरोपित की गई जिसे अमिताभ बच्चन जैसे नायकों ने एक नई ऊँचाई प्रदान की। सत्तर के दशक में देश की राजनीतिक व्यवस्था अस्थिर थी तथा उसे एक ओर जयप्रकाश नारायण जैसे नेताओं

Think IAS

दृष्टि The Vision

Think Drishti

घर बैठे IAS/PCS की संपूर्ण तैयारी करने के लिये आपका स्वागत है

Drishti Learning App

पर

GET IT ON Google Play

अपने एंड्रॉयड फोन पर आज ही इंस्टॉल करें

ऐप की विशेषताएँ

- टीम दृष्टि द्वारा दी जाने वाली सभी सुविधाएँ एक ही मंच पर।
- ऑनलाइन, पेनड्राइव मोड में कक्षाएँ उपलब्ध।
- प्रिलिम्स और मेन्स की टेस्ट सीरीज़ भी ऐप के माध्यम से उपलब्ध।
- सभी पुस्तकें, मैगजीन, डिस्टेंस लर्निंग प्रोग्राम के नोट्स देखने व मंगवाने की सुविधा।

ऑनलाइन कोर्स की विशेषताएँ

- घर बैठे देश के सर्वोत्कृष्ट अध्यापकों से पढ़ने की सुविधा।
- अब दिल्ली या किसी बड़े शहर जाकर पढ़ने की मजबूरी नहीं।
- IAS और PCS के कोर्स उपलब्ध।
- ऑनलाइन कोर्स करने के बाद, क्लासरूम कोर्स में प्रवेश लेने पर शुल्क में विशेष छूट।
- हर क्लास अपनी सुविधा से 3 बार देखने की सुविधा।
- उत्तर लिखकर चेक कराने तथा संदेह-समाधान की व्यवस्था भी शीघ्र उपलब्ध।
- कई विषयों के कोर्स ऑनलाइन और पेनड्राइव मोड में भी उपलब्ध।

दृष्टि आई.ए.एस. (दिल्ली शाखा) का पता
641, प्रथम तल, डॉ. मुखर्जी नगर, दिल्ली-09
8448485519, 87501 87501, 011-47532596

दृष्टि आई.ए.एस. (प्रयागराज शाखा) का पता
ताशकंद मार्ग, निकट पत्रिका चौराहा, सिविल लाइन्स, प्रयागराज
8448485518, 8750187501, 8929439702

दृष्टि आई.ए.एस. (राजस्थान शाखा) का पता
प्लॉट नंबर-45 व 45-A, हर्ष टावर-2, मेन टोंक रोड़,
वसुंधरा कॉलोनी, जयपुर राजस्थान-302018
8448485518, 8750187501, 8929439702

दृष्टि लर्निंग ऐप पर उपलब्ध प्रमुख कोर्सेज़

IAS Foundation Course

सामान्य अध्ययन

प्रिलिम्स + मेन्स

- 1200+ घंटों की 500+ कक्षाएँ
- सभी टॉपिक के लिये प्रिंटेड नोट्स
- 3 वर्षों के लिये अन्य विशेष सुविधाएँ

IAS Foundation Course

General Studies

Prelims + Mains

- 400+ Classes of 1000+ hrs.
- Printed Notes of All Segments
- Other special facilities for 3 years

IAS Prelims Course

सामान्य अध्ययन

केवल प्रिलिम्स

- 500+ घंटों की कक्षाएँ
- 'क्विक बुक सीरीज़' की 8 पुस्तकें
- 2 वर्षों के लिये अन्य विशेष सुविधाएँ

IAS + UPPCS + BPSC Optional Subject

हिंदी साहित्य

द्वारा- डॉ. विकास दिव्यकीर्ति

- 400+ घंटों की कक्षाएँ
- पाठ्यक्रम में शामिल सभी पाठ्य-पुस्तकें तथा प्रिंटेड नोट्स
- 145 दैनिक अभ्यास प्रश्न और 18 टेस्ट पेपर (मॉडल उत्तर सहित)

BPSC Prelims Course

बिहार PCS

- 500+ घंटों की कक्षाएँ
- 'BPSC सीरीज़' की 8 पुस्तकें
- 2 वर्षों के लिये अन्य विशेष सुविधाएँ

RAS/RTS Prelims Course

राजस्थान PCS

- 500+ घंटों की कक्षाएँ
- 'RAS सीरीज़' की 8 पुस्तकें
- 2 वर्षों के लिये अन्य विशेष सुविधाएँ

अतिरिक्त जानकारी के लिये 9311406442 नंबर पर कॉल करें या वाट्सएप करें

विज़िट करें www.drishtiIAS.com

अपने फोन पर इंस्टॉल करें Drishti Learning App

641, 1st Floor, Dr. Mukherji Nagar, Delhi-9
Ph.: 011-47532596, 87501 87501
Website: www.drishtiias.com
E-mail: booksteam@groupdrishti.com

ISBN 978-93-909550-0-8

मूल्य : ₹ 490